R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18

जुलाई 2018

अंक 6

तपोभूमि

मासिक

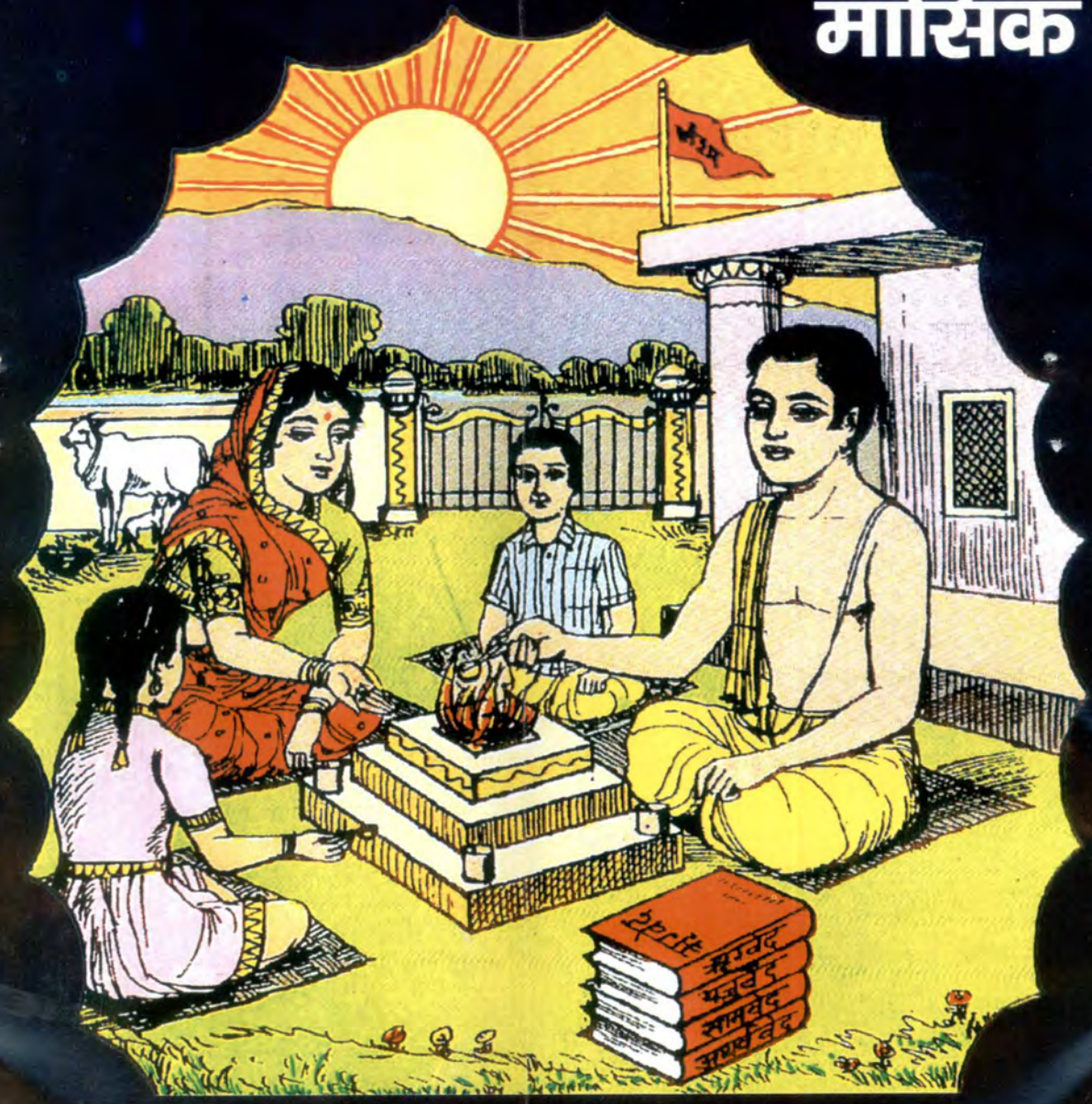

सम्पादकीय

शिक्षा का सरलीकरण या सर्वनाश

वर्तमान में सरकार द्वारा नियुक्त शिक्षाविदों ने एक अभियान चला रखा है। शिक्षा के सरलीकरण की जिस योजना के द्वारा शिक्षा को उपयोगी बनाने के लिए नाना प्रकार के प्रयोग किये जा रहे हैं वे सारे प्रयोग निष्फल ही सिद्ध हो रहे हैं। वर्तमान शिक्षाविद प्राचीन अत्युत्तम शिक्षा प्रणाली से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। उनके नित्य नये प्रयोग वर्तमान पीढ़ी का सर्वनाश ही कर रहे हैं। न तो तथाकथित शिक्षाविदों को शिक्षा देने की सक्षम प्रणाली का ज्ञान है और न ही शिक्षा व्यवस्था के लिये उत्तम विषय चयन की योग्यता है। सरकार में बैठे व्यक्ति भी उन्हीं का अन्धानुकरण कर रहे हैं। परीक्षा की शुचिता बिना योग्यता प्राप्त होना असम्भव है पर वर्तमान में बिना परीक्षा के बच्चों को उत्तीर्ण करके सरकार ने उनके योग्य होने के सभी द्वार बन्द कर दिये हैं। विद्यार्थियों ने विद्या के प्रति विमुखता अपना ली है इसलिए वे आगे की श्रेणियों में परीक्षा में केवल नकल के आश्रय होकर रह जाते हैं और योग्यता से विमुख होकर पशु के समान व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं। आजकल हत्या, लूटपाट, व्यभिचार आदि अराजकता ऐसी ही प्रणाली में पले बड़े छात्रों द्वारा फैलाई जा रही है जो परीक्षा हो रही है उसका भी स्तर नितान्त घटिया है। शिक्षा की गरिमा का सर्वनाश (CBSE) केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड जैसी संस्थाओं ने कर डाला है। इन्होंने विद्यार्थियों को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए परीक्षा प्रणाली को अत्यन्त हास्यास्पद बनाकर रख दिया। आप उनके प्रश्नपत्रों को देखिए तो अत्यन्त निम्न स्तर के होते हैं। वैकल्पिक प्रश्न होते हैं। जिसमें सही गलत का चिन्ह लगाना होता है। बड़ी सरलता से आचरणहीन परीक्षक प्रश्नों को इशारे मात्र से हल करा देता है। परीक्षा की सही कसौटी विस्तृत प्रश्नोतरों में ही होती है जिसका अब सर्वथा अभाव दिखाई दे रहा है। माता-पिता नितान्त धोखें में रह जाते हैं वे केवल परीक्षा में आये बच्चे के अंकों को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। पर उन बेचारों को यह पता नहीं होता है कि उनके बच्चों के साथ शिक्षा के नाम पर बोर्ड कितना बड़ा धोखा कर रहा है। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि (CBSE) बोर्ड के छात्र 500 में से 499 अंक लाते हैं। जब उन्हीं छात्रों से हिन्दी का एक पेज लिखने के लिए कहो तो उसमें एक पेज में ही दशियों त्रुटियां दृष्टिगोचर होती हैं इतने अंक प्राप्त करने वाला विद्यार्थी अयोग्यता के अन्धकार पूर्ण संसार में धक्के खाता दिखाई देता है। सरकारी प्रतियोगिताओं में नौकरी के लिए आवेदन करने पर जब उन परीक्षाओं को उत्तीर्ण नहीं कर पाता है तब आत्महत्या जैसे कदम उठा देता है और अपने स्वर्णिम भविष्य की आशा लगाये माता-पिता को आजीवन अश्रु बहाने के लिए छोड़ देता है अथवा संसार में असफल होकर अराजकता की तरफ कदम बढ़ा देता है और सारे समाज में अशान्ति का वातावरण उत्पन्न कर देता है। जैसाकि आजकल दिखाई दे रहा है। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणाली जहां विद्यार्थियों को बौद्धिक रूप से दिवालिया बना देती है वहीं चारित्रिक रूप से भी उनका सर्वनाश कर देती है। पुरातन शिक्षा प्रणाली में मानस की पवित्रता बनाये रखना सर्वोच्च प्राथमिकता में रखा जाता था इसीलिए पढ़ने वाले विद्यार्थियों को वासनात्मक प्रवृत्तियों से सर्वथा दूर रखा जाता था। लड़के-लड़कियों के विद्यालय न्यून से न्यून 5 (पांच) किलोमीटर दूर होते थे। पढ़ने वाले विद्यार्थी तन- मन- धन से अत्यधिक

-(शेष पृष्ठ संख्या 35 पर)

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–64 संवत्सर 2075 जुलाई 2018 अंक 6

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

जुलाई 2018

सृष्टि संवत्
1960853119

दयानन्दाब्दः 194

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा (उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
आचार	–श्यामबिहारी मिश्र	5–8
विरजानन्द प्रकाश	–भीमसेन शास्त्री विद्याभूषण	9–12
गो–रक्षा	–स्वामी सत्यानन्द महाराज	13–15
पक्षपात और द्वेष से धर्महानि	–सूरजभान आर्य	16–19
द्रव्य का उपयोग	–पं0 माधवराव	20–23
चौबीस गुरुओं से शिक्षा ग्रहण		24–26
स्वास्थ्य चर्चा		27–30
भारत–स्तुति	–मैथिलीशरण गुप्त	31–33
आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर मथुरा का वार्षिक उत्सव		34

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

पूर्व जन्म के संस्कारों के अनुसार नव शरीर–धारण

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत।। –अथर्व0 5.1.2

शब्दार्थः–

(यः प्रथमः) जिस तुझ पूर्व जन्म के जीवात्मा ने (धर्माणि) धर्माधर्मों को या शुभाशुभ कर्मसंस्कारों को (आ ससाद) प्राप्त किया था, (ततः) उन्हीं के अनुसार तू (पुरूणि वपूंषि कृणुषे) बहुत–से शरीरों को धारण करता है। (प्रथमः) जिसे पूर्व जन्म प्राप्त हो चुका है ऐसा (धास्युः) देह धारण की इच्छावाला जीवात्मा (योनिम् आ विवेश) गर्भाशय में प्रविष्ट होता है, (यः) जो (अनुदिताम्) इस जन्म में न कही गयी, अपितु पूर्व जन्म में सीखी गयी (वाचम्) हँसने रोने आदि की वाणी को (चिकेत) जानता है।

भावार्थः–

जीवात्मा अमर है, शरीर के मर जाने से वह नहीं मरता। वह फिर–फिर जन्म धारण करता है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह किस योनि में जन्म लेता है, कुत्ता, बिल्ली, सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, मृग, गाय, भैंस, ऊँट, पुरुष, स्त्री आदि योनियाँ तो अनेक हैं। इसका उत्तर है कि पूर्व–जन्मों में उसने जैसे, जिस योनि में जाने योग्य कर्म किये होते हैं, उनके संस्कार आत्मा में रहते हैं, उन संस्कारों के अनुरूप जिस योनि में जाना उचित होता है, उस योनि में जाता है। जिस योनि में जाता है उस योनि में भी कुछ कर्म करता है और कुछ कर्म उसने पूर्व जन्मों में किये होते हैं, उनमें से जो कर्म फल देने से बचे हुए हैं, उनका अच्छा या बुरा फल इस योनि में प्राप्त करता है।

मन्त्र के उत्तरार्ध में जीवात्मा को 'धास्युः' कहा गया है। 'धास्यु का अर्थ है देहधारण की इच्छावाला। वह देहधारण की इच्छा करता क्यों है, इसका उत्तर है भोग से अवशिष्ट कर्मसंस्कारों का भोग प्राप्त करने के हेतु देहधारण करना चाहता है। मन्त्र में जीवात्मा को 'प्रथमः' भी कहा गया है, अतः पहले भी वह शरीर धारण कर चुका है। पूर्वार्ध में मन्त्र का यह वक्तव्य है कि पूर्व जन्म में शरीर धारण कर चुके जीवात्मा ने जैसे धर्माधर्म या शुभाशुभ कर्मसंस्कार प्राप्त किये होते हैं उन्हीं के अनुसार वह अनेक शरीरों को क्रमशः ग्रहण करता है। शरीर धारण का इच्छुक धास्यु जीवात्मा जब माता के गर्भाशय में प्रवेश करता है, तब बाहर निकलने पर हँसता या रोता है। यह हँसना–रोना उसने कहाँ से सीखा? यह इस जन्म में तो उसने सीखा नहीं। पूर्वजन्म में ही सीखा है, उसके संस्कार इस जन्म में भी अवशिष्ट हैं। उन्हीं के कारण हँसता या रोता है। इससे पूर्वजन्म की भी सिद्धि होती है। ❁

गतांक से आगे–

आचार

लेखकः श्यामबिहारी मिश्र

फिर शास्त्रकारों का कथन है कि ऋणी लोग झूठे, अस्वस्थ और पापी होते हैं। उनका झूठा होना इस प्रकार सिद्ध है कि वे अपने वास्तविक विभव से अधिक महत्व लोगों पर प्रदर्शित करना चाहते हैं, मानों प्रत्येक परिचित जन से कहते हैं कि हममें इस प्रकार व्यय करने का आर्थिक सामर्थ्य है, यद्यपि वास्तविक दशा इससे बिल्कुल प्रतिकूल है। उनकी अस्वस्थता इस प्रकार मानी गई है कि मानसिक चिंताओं का प्रभाव शरीर पर अवश्य पड़ता है और ऋणी मनुष्य निश्चिन्त कभी नहीं रह सकता। इसी तर्क के अनुसार कहा जाता है कि मितव्यय की बानि स्वास्थ्य–प्रदायिनी होती है। ऋणी मनुष्य पापी इसलिये माना गया है कि वह अपने पुरुषार्थ का सहारा न करके दूसरों की कमाई से कुछ चुराता है। मनुष्य को यथाशक्ति सभी दूषणों से बचना चाहिए। किन्तु प्रायः ऐसा होता है कि लोग दोष से बचने के इतना प्रयत्न नहीं करते जितना कि वास्तविक दोष–गोपन का। इसीलिये प्रायः देखा गया है कि दोषों से चरित्र इतना तबाह नहीं होता है जितना कि दोष के पीछेवाले आचरणों से। ये आचरण प्रायः सत्य के बड़े ही विरोधी होते हैं जिसका कथन कर्तव्य के वर्णन में ऊपर आ चुका है। कुल बातों का सारांश यह है कि मनुष्य को न केवल भद्रत्व–प्रदर्शन का प्रयत्न करना चाहिए वरन् भद्रत्व के सब लक्षण अपने में पूर्णतया लाने का अनिवार्य परिश्रम प्रत्येक सुधी के लिये योग्य है।

अब हम व्यक्त्याचार सम्बन्धी विचारों का कथन भगवान मनु की दश आज्ञाओं के वर्णन के साथ समाप्त करेंगे। महात्मा मूसा की दस आज्ञाओं का हाल तो बहुत लोगों ने सुना होगा किन्तु भगवान् मनु की दसों आज्ञाएँ उचित प्रकार से ज्ञात नहीं है। उन्हीं का वर्णन अब हम इस स्थान पर करते हैं–

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

धृति (धैर्य) के बिना कोई पुरुष सदाचारी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जल्दी में वह प्रायः ऐसे काम कर बैठेगा जो विचारपूर्वक चलने से वह कभी न करता। तुरता से न जाने हुए भी हमारे विचारों में अनेक दोष रह जाते हैं। एकाएकी भारी दुःखों से धैर्य का निरादर करनेवाला बहुत शीघ्र विचलित हो जायगा। धैर्य के अभाव से मनुष्य को अनेकानेक ऐसी हानियाँ सहनी पड़ती हैं जिनसे सावधान मनुष्य सुगमता से बचा सकता है। क्षमाहीन लोग संसार के समालोचक न कहे जाकर पूरे आततायी माने जायेंगे। मनुष्य स्वभावशः एक ऐसा दुर्बल जीव है, और शिक्षा, अनुभव, विचारशक्ति आदि में भिन्न–भिन्न मनुष्यों में इतना अन्तर होता है कि किसी की भूलों पर रुष्ट होना पंडित का काम नहीं है। भूल तो सभी

से होती है। फिर किसी की भूल पर क्रोध करना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है? बहुत से लोग कहते हैं कि जान बूझ कर बुराई करनेवाले को क्षमा कैसे किया जाय? उनको यही सोचना चाहिए कि जो कोई भूल करता है वह अज्ञानवश करता है। बिना अविद्या के भूल हो ही नहीं सकती। तब क्षमा के लिये जान बूझ कर अथवा बे जानी हुई दोनों भूलें बराबर हैं। इसी के साथ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उचित दण्ड का देना क्षमा का किसी अंश में भी विनाशक अथवा प्रतिद्वंदी नहीं है। ईश्वर के बराबर क्षमावान् कोई नहीं है, किन्तु वह भी उचित दण्ड सदैव देता है। दण्ड तो आचार सुधारने के लिये दिया जाता है, न कि बुराई बढ़ाने को। दण्ड बुरा तभी कहा जायगा जब वह औचित्य की मात्रा से बढ़ेगा।

दम मानसिक इन्द्रियों के दमन को कहते हैं और इन्द्रिय निग्रह शारीरिक इन्द्रियों के दमन का नाम है। ये दोनों दृढ़ताएँ सदाचार विवर्द्धिनी हैं। जो मनुष्य बाह्येन्द्रियों को वश में करके भी मानसिक वासनाओं को नहीं रोक सकता उसका आचार मिथ्याचार मात्र है। बिना इन्द्रियदम के कोई मनुष्य स्वप्न तक में सदाचारी नहीं हो सकता। यह बात बिल्कुल प्रकट है और इसकी पुष्टि में कोई युक्तियुक्त प्रमाण देना अनावश्यक है।

अस्तेय (चोरी का अभाव) देखने में एक साधारण बात समझ पड़ती है, किन्तु वास्तव में बड़ा ही प्रधान गुण है। चोरी केवल सेंध लगाने अथवा छिपाकर किसी का धन उठा लेने में नहीं होती है वरन् किसी प्रकार से ऐसे धन, अधिकार, प्रभुत्व आदि के उपभोग में भी समझी जायगी जिसका कि भोक्ता अधिकारी नहीं है। अनधिकार प्राप्ति में सदैव चोरी आ जायगी चाहे वह धन की हो, अथवा कीर्ति, प्रशंसा या किसी भी अन्य वस्तु की। यदि किसी और ने कोई अच्छा काम किया है और मैं यह जान कर भी कि मेरा उससे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है, लोगों से उस विषय में अपनी बड़ाई सुनकर मौनावलम्बी रहूं तो भी मैं एक प्रकार से चौरकर्म का दोषी हूँगा। इसलिये पूर्ण न्याय से इतर जितने कार्य अथवा अधिकार प्राप्त होते हैं, उन सबमें कहीं न कहीं चौरकर्म आ जाता है। इन सबसे बचना प्रत्येक सदाचारी का पवित्र कर्तव्य है।

शौच विशेषतया शारीरिक स्वच्छता से सम्बन्ध रखता है। इसका न होना केवल भद्रत्व के लिये, वरन् मनुष्यत्व के लिये भी परमावश्यक है जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है। फिर भी हमसरे शास्त्रों ने शौच सम्बन्धी अनेकानेक नियमोपनियम बना रक्खे हैं जिनका मानना भी समाज आचार का एक अंग मानता है। किन्तु इतना सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि ये नियम सदाचार से सम्बन्ध न रखकर धर्म से ही वास्ता रखते हैं। सदाचार से इनसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

बिना धी (बुद्धि) के कोई सदाचारी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसके बिना उसे आचार-शास्त्र का समुचित ज्ञान हो ही नहीं सकता। विद्या भी सदाचार के लिये परमावश्यक है और बिना सत्य के कर्तव्य का पालन कभी नहीं हो सकता। इसका वर्णन कर्तव्य-कथन के अन्तर्गत हो चुका है। अक्रोध, सदाचार तथा भद्रत्व का बहुत बड़ा समर्थक है। इसका कथन इसी ग्रंथ में अन्यत्र कुछ विस्तार के साथ

होगा। इन दसों गुणों को भगवान मनु ने धर्म के लक्षण माना है। उनकी अनुमति में बिना इनके कोई मनुष्य धर्मी नहीं हो सकता।

यहाँ तक व्यक्त्याचार का वर्णन किया गया। अब कुलाचार और देशाचार का कुछ कथन शेष है। पहले हम कुलाचार का ही कथन करते हैं। कुल का लक्षण यों कहा गया है–

"आचारो विनयो विद्या प्रतिष्ठा तीर्थदर्शनम्।
निष्ठा वृत्तिस्तपोदानं नवधा कुललक्षणम्।।"

इस कथन के अनुसार जिसमें ये नौ गुण हों वही पुरुष कुलीन कहा जा सकता है, और कोई नहीं। धर्म के दसों गुणों से यदि कुल के गुण मिलाए जायँ तो ज्ञात होगा कि सिवा विद्या के इन दोनों में और कुछ नहीं मिलता है। ध्यानपूर्वक देखने से विदित होगा कि कुल के गुणों में सांसारिक प्रतिष्ठा का विचार कुछ अधिक दृढ़ है। जान पड़ता है कि शास्त्रानुसार सभी कुलीन पुरुषों को धर्मी होना चाहिए, किन्तु सभी धार्मिक लोगों को कुलीन होने की आवश्यकता नहीं है। कुल एक मनुष्य से नहीं बनता, वरन् इसके लिये समुदाय की भी आवश्यकता है। संसार में सैकड़ों देश हैं और प्रत्येक देश में अनेकानेक समुदाय हैं। देश, काल, अनुभव, इतिहास, व्यापार आदि के विचारों से प्रत्येक कुल का आचार अन्यों से कुछ पृथक् रहता है। उस कुल के सभी व्यक्तियों पर यह पार्थक्य भी कुछ न कुछ बाध्य अवश्य है। इसलिये देश में कुलाचारों का प्रचार हुआ। इनकी उत्तमता अथवा निकृष्टता के जांचने में सदाचार की कसौटी का प्रयोग आवश्यक है। जो कुलाचार सदाचार से बाहर नहीं निकलता, वह माननीय हो सकता है। फिर भी कुलाचार और सदाचार में इतना भेद है कि इसकी आज्ञाएँ प्रत्येक पुरुष पर बाध्य हैं, किन्तु उस (कुलाचार) की प्रति मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है।

देशाचार अनेकानेक कुलाचारों का समूह हो सकता है। एक देश में एक ही कुल का भी होना संभव है, किन्तु बहुधा प्रति देश में अनेक कुल होते हैं। इसीलिये कुलाचार जैसे व्यक्त्याचारों का समूह और एक प्रकार से पथ-प्रदर्शक है, वैसे ही प्रायः देशाचार भी कुलाचारों का समुदाय और नेता है। फिर भी व्यक्त्याचार इन दोनों से सिरे है। बिना इसके मुख्य सिद्धान्तों का मान किए कोई कुलाचार अथवा देशाचार मान्य नहीं हो सकता। देशाचार का प्रभाव व्यक्त्याचारों पर बहुत पड़ता है, किन्तु प्रभावशाली महात्माओं का व्यक्त्यचार, देशाचार एवं कुलाचार को, मोम प्रतिमा की भांति जैसा चाहे वैसा बना बिगाड़ सकता है। जिस देश में जितने ही ऐसे महापुरुष उत्पन्न हो जाते हैं, उसकी उतनी ही अधिक गरिमा होती है। इन्हीं महापुरुषों का हम लोग उदाहरण देते हैं। दृढ़च्छा और उदाहरण चरित्र के सब से बड़े सहायक होते हैं। उदाहरण होने के लिये व्यक्ति का भला और महात्मा होना परमाश्यक है। ऐसे उदाहरणों का कभी विनाश नहीं होता क्योंकि मरणानन्तर भी उनके चरित्र पृथ्वी पर वर्तमान रहकर जीवितावस्था से बहुत अधिक कार्य संपादित करते हैं। ऐसी दशा में उनके चरित्र औरों के व्यक्त्याचरणों में घुसकर एक ही साथ असंख्य रूप धर के काम करते हैं। कौन कह सकता है कि महात्मा व्यास, बुद्ध,

शंकर, कपिल, पतंजलि, महर्षि दयानन्दजी आदि की आत्माएँ सहसत्र रूप धर कर प्रति क्षण कार्य संपादित नहीं करतीं। भारी-भारी विचार समय पर परिपक्व होकर तादृश कार्य करते हैं। महापुरुषों को संसार ने जातियों का दाय माना है। प्रत्येक जाति की गुरुता उसके उदाहरणों पर निर्भर है। व्यक्त्याचार की महत्ता ही कुलाचार और देशाचार का प्राण है। बिना इसके कुलाचार और देशाचार शवप्राय हैं। यदि महात्मा भीष्म पितामह सा दृढ़प्रतिज्ञ, रामचन्द्र सा आदर्श आर्य, सुदास सा विजयी, मनु सा राजा, हरिश्चन्द्र सा सत्यप्रिय, व्यास सा कवि एवं दार्शनिक, बुद्ध सा दयावान तथा ज्ञानी, शंकर सा पंडित, पतंजलि सा योगी, कपिल सा स्वतंत्र विचारी, कृष्ण सा सर्वगुणाकर, अर्जुन सा वीर, बलि सा दानी, प्रहलाद एवं चैतन्य सा भक्त, शिवाजी सा स्वदेशानुरागी, परशुराम सा पितृप्रेमी, यशोदा सी माता, कालिदास एवं दशरथ सा पिता, भरत सा भाई, बाजीप्रभु देशपांडे सा सेवक, सावित्री सी सती, शुक्र सा मंत्री, हम्मीर सा मित्र, प्रतापसिंह सा जात्यभिमानी, शिशादिया चंद सा कर्तव्यपरायण, अशोक सा धार्मिक और बीसलदेव सा प्रबन्धकर्त्ता महर्षि दयानन्द सा सत्याग्रही आदि भारत में न हो गए होते तो आज इस हतभाग्य देश का अवनति में भी सिर ऊँचा करनेवाला कोई न होता और हमारे लिये उन्नति का पथ-प्रदर्शक देखने में न आता। उपरोक्त कथनों से प्रकट है कि ये तीनों प्रकार के आचार एक दूसरे के नेता एवं अनुगामी हैं। इनमें से प्रत्येक का औरों पर पूरा प्रभाव पड़ता है तथा इन तीनों की स्थिति तीनों ही के प्रभाव की फलस्वरूपा है। देशाचार पर भौगोलिक दशाओं का भी बड़ा प्रभाव रहता है, वरन् यों कहना चाहिए कि देशाचारों पर भूगोल ही की मुख्यता है, यद्यपि इतिहास का भी कम प्रभाव इस पर नहीं रहता। ऐतिहासिक प्रभाव भी एक प्रकार से व्यक्त्यचार ही का फल है किन्तु कभी-कभी अन्य कारणों से भी होता है। वर्तमान काल में सभ्यता के बढ़ने से ऐतिहासिक घटनाएँ बहुतायत से एक व्यक्ति के अधीन नहीं रह गई हैं और सारे देश के मतसमुदाय का प्रभाव पाकर वे संगठित होती हैं। इतिहास देशाचार पर कैसे प्रभाव डालता है इसका एक उदाहरण भारत में स्त्रियों का पर्दे में रहना है। मुसलमान जिस काल भारत में विजयार्थ आकर सफल मनोरथ हुए, तब भी बहुत काल पर्यन्त अपने देशों से समुचित संख्या में स्त्रियां न ला सके। इसलिये उन्हें बलपूर्वक यहां से स्त्रियां छीननी पड़ीं। इसका फल यह हुआ कि स्त्रीरक्षा में असमर्थ हिन्दू लोगों को अपनी रामाएँ पर्दे में रखनी पड़ीं।

भौगोलिक दशाओं का प्रभाव लोकाचार पर कैसे पड़ता है, इसके उदाहरण देने तक की आवश्यकता नहीं है। लोगों में वस्त्रों का बहुतायत एवं कमी, विशिष्ट भोज्य पदार्थों का ग्रहण एवं त्याग, भोजन करने के प्रकार, अनेकानेक आहलिक तथा नैमित्तिक आचार आदि सब विशेषतया देशों में उष्णता एवं शैत्य की प्रधानता तथा अप्रधानता पर निर्भर हैं। जहां शैत्य की विशेषता है वहां लोगों में कपड़ों की बहुतायत, मद्य सेवन की बानि, गरमी उत्पन्न करनेवाले भोजन की रुचि, बालविवाह से घृणा, मांसाशन से प्रेम इत्यादि अनेकानेक आचारों का प्राधान्य देखा जायगा। इसी प्रकार उष्णता-प्रधान देशों के आचार इन बातों के प्रतिकूल होंगे। धर्मों पर भी इन्हीं कारणों का प्रभाव पड़ता है।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

विरजानन्द प्रकाश

लेखक: भीमसेन शास्त्री विद्याभूषण

उपर्युक्त गृह मुनिवर विरजानन्द की 22 वर्ष पर्यन्त तपोभूमि रहा है। साथ ही लगभग ढाई वर्ष मुमुक्षुवर्य योगि–श्रेष्ठ दयानन्द की भी साधना–भूमि रहा है। पिछले दिनों में यह गृह 'सरीनों के घर' नाम से प्रसिद्ध रहा है। विरजानन्द तथा दयानन्द के इतिहास से परिचित आर्यजनता सदा ही इस तीर्थ–भूमि को प्राप्त करने के लिए लालायित रही है।

सं0 1981 में दयानन्द–जन्म–शताब्दी मथुरा में मनाई गई। तब आर्यजनता की यह लालसा अधिक तीव्र हो गई। घर के इस समय के स्वामी समय को पहिचानते थे और स्वार्थ–प्रवृत्ति ने उनके सत्त्वगुण को दबा दिया था। कहने लगे–"तीन लाख ऋषिभक्त मेले में एकत्र हुए हैं, सब एक–एक रुपया गुरु–भक्ति से अर्पण करें।" लोभ की कोई सीमा नहीं होती। तीन लाख रुपये की बोली गृहस्वामी ने रखी, अतः बात खटाई में पड़ गई।

धीरे–धीरे प्रयत्न चलता ही रहा। उत्तरप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा ने यह कार्य मथुरा के श्री कर्णसिंहजी छोंकर को सौंपा। इन्होंने पत्र द्वारा इस गृह के इतिहास के विषय में मुझसे जानकारी चाही। पत्र मुझे सं0 2005 चैत्र व0 सोम 21–3–1949 को मिला। मैं उसी रात कोटे से चल अगले दिन भौमवार प्रातः मथुरा पहुंचा और श्री छोंकर महोदय से जो कुछ जानता था, निवेदन कर दिया।

बड़े हर्ष का विषय है कि आर्यसमाज के महान् प्रयत्नों से वह तीर्थस्थान उत्तरप्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा के हस्तगत हो चुका है, और मुनिवर विरजानन्द के निर्वाण के 91 वर्ष पश्चात् और आर्षयुग प्रवृत्ति के पूरे 100 वर्ष पश्चात् (सं0 2016 दीपावली पर) इसमें उत्सव मनाया जा रहा है।

दण्डी जी का माथुर शिष्यमण्डल
(सं0 1902–1925)

तीर्थस्थान साम्प्रदायिकता के धर्मान्धता के गढ़ होते हैं। हम ऊपर लिख आए हैं कि इस घोर धर्मान्धता के गढ़ में विरजानन्द के परिष्कृत विचारों, स्वतन्त्र–प्रज्ञता ने अतीव विरोधी, अग्निमय वातावरण उत्पन्न कर दिया था और छः मास तक उन्हें अधिकारी छात्र न मिले।

विरोधियों के अनवरत विरोध के रहते हुए भी विरजानन्द के वैदुष्य, उच्च चरित्र, निःस्पृहता, आदि गुण–गण की कीर्ति धीरे–धीरे मथुरा, वृन्दावन और सम्पूर्ण ब्रजभूमि तथा अन्यत्र भी दूर–दूर छाने लगी थी। बाहर से आए हुए विद्वज्जन अपने घरों पर जाकर मित्र–मण्डल में इनकी गुणावली का सहर्ष उद्घोष करते थे।

योग्य छात्रों का मिलना कैसे आरम्भ हुआ, यह भी हम ऊपर बता चुके हैं। माथुर विबुध–शिरोमणियों ने अपने योग्यतम छात्रों को कठिनतम प्रश्न सिखाकर इनके वैदुष्य तल के परिज्ञानार्थ भेजा। इस प्रकार जो छात्र भेजे गए, वे इनके वैदुष्य–चुम्बक से चमत्कृत हो, इन्हीं के छात्र बन गए। पं0 युगलकिशोर इनके प्रथम योग्य छात्र थे, जो संवत् 1902 (मथुरागमन वर्ष) से सं0 1925 (निर्वाण काल) तक इनसे अध्ययन–संलग्न और सेवापरायण रहे, और पश्चात् अपने जीवनपर्यन्त उन्होंन विरजानन्दजी की गद्दी पर बैठकर आर्ष ग्रन्थों का अध्यापन किया।

धीरे–धीरे पांसा ऐसा पलटा कि दण्डी जी की विद्वता से आकृष्ट हो मथुरा के प्रायः सारे ही उच्च अध्यापक उनसे अध्ययन–परायण हो गये थे। चौबे गंगादत्त तथा रंगदत्त अच्छे व्याकरण–विशारद थे। उन्होंने काशी में यथेच्छ अध्ययन किया था। तदनन्तर वे मथुरा लौटकर अध्यापन–निरत हो गए थे। ये भी दण्डी जी के वैदग्ध्य, संस्कृत–वैदुष्य से समाकृष्ट हो उनके पास पढ़ने लगे थे। इसी प्रकार मथुरा के अधिकांश उत्कृष्ट पण्डित दण्डीजी के शिष्य बन गए थे।

मथुरा के अध्यापक जो दण्डीजी के शिष्य बने, वे ये हैं–देवीदत्त, केशवदेव (70 वर्ष), रामरत्न, केशवदेव (30 वर्ष), दीनबन्धु, शिवलाल, एक पन्थ (नाम विस्मृत, वैरागपुरा के), हरिकृष्ण, बलदेव, मदनजी, उदयप्रकाश, दामोदर, गणेशजी, शुकदेवजी, झबोलजी, मुरमुरिया, मदनदत्त फलाहारी, भट्ट रमेश गंगादत्त, रंगदत्त, नन्दनजी, वासुदेव शास्त्री, शीलचन्द, भगवान्, अमरनाथ औदीच्य, रघुनाथ घुले, मुकुन्दराम आदि।

मथुरा के कुछ अध्यापक विरजानन्दजी के शिष्य नहीं बने, वे ये हैं–

1. पं0 मनसाराम। ये विरजानन्द की निन्दा कभी न करते थे। ये 90 वर्ष के थे।
2. पं0 लक्ष्मीनारायण। 60 वर्ष। भागवत के उत्कृष्ट पण्डित थे। सुतरां दण्डीजी के द्वेषी थे।
3. पं0 सोहनलाल गोस्वामी सारस्वत। भागवत के अध्यापक थे।
4. पं0 वासुदेव धारा स्वामी। 70 वर्ष। ये दण्डीजी के परम प्रतिद्वन्द्वी थे।
5. पं0 बलदेव मिश्र। ज्योतिष के सिद्धान्त–ग्रन्थ पढ़ाते थे।

इन पांच को छोड़ मथुरा के शेष सारे अध्यापक धीरे–धीरे दण्डीजी के शिष्य बन गए थे।

युगलकिशोर जी की चर्चा ऊपर आई है। कुछ अन्य शिष्यों के नाम–जगन्नाथजी चौबे, दामोदरदत्तजी सनाढय, चिरंजीविलाल, गरुड़ध्वज, रामचन्द्र जी सनाढय (गोकुल), पं0 ब्रजकिशोर जी (गिडोये ग्राम), पं0 गोपालदत्त (कासगंज), श्यामसुन्दर, पुरुषोत्तम वनमाली, सोहनलाल (ये भागवतपाठी से भिन्न हैं), पांडे श्यामलाल, गोपीनाथ दक्षिणी, पुण्डरीक, सोमनाथ चौबे, गयाप्रसाद, पं0 चेतूलाल, पं0 मोहनलाल, विष्णुलाल पण्डया।

सोरों व अलवर के शिष्यों के नाम इनमें संग्रह नहीं किये गए।

श्री दण्डी जी के वैदुष्य की छाप विदुष्मती काशी पर इतनी पड़ी कि वहां विद्या समाप्त कर कुछ पण्डित दण्डीजी से पढ़ने आए। सुना गया है कि कोई–कोई बुधवर्य कुछ दिन मथुरा वास कर जाते थे और इतने से ही अपने को दण्डीजी का शिष्य उद्घोषित कर अपने को गर्वित अनुभव करते थे।

महर्षि दयानन्द तो, विरजानन्दजी के प्रसिद्धतम शिष्य थे ही। वे शिष्य न बने होते, तो विरजानन्द की कीर्ति-दीपक उनके निर्वाण के 50 वर्ष के अन्दर ही मथुरा में भी निर्वाण हो जाता। शेष संसार में तो उन्हें कौन जानता।

शब्दानुशासन की उपलब्धि

आर्यसमाज का तीसरा नियम है कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।"

मानव-धर्मशास्त्र में भी आया है-"सर्वज्ञानमयो हि सः" मनु0 2। 7॥

सारे ही ऋषियों का यही सिद्धान्त रहा है। विद्वानों ने व्याकरण का मूल भी वेदों में खोजा है। व्याकरण-शास्त्र का विकास होने पर ही वेद संहिताओं के पद-पाठ बने। वाल्मीकीय रामायण साक्षी है कि उस काल में व्याकरण का व्यवस्थित अध्ययन होता था। यास्कमुनि महाभारत युद्ध के समकालिक थे। उनके निरुक्त में अनेक वैयाकरणों का उल्लेख मिलता है। वेद-षडंगों में व्याकरण प्रधान है। ब्रह्मा, बृहस्पति, इन्द्र आदि प्रारम्भिक व्याकरण-प्रवक्ता हुए हैं। आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चाक्रवर्मण, भारद्वाज, शाकटायन, शाकल्य, सेनक और स्फोटायन पाणिनि से पुरातन वैयाकरण हुए हैं। ऋक्प्रातिशाख्य तो पाणिनि से निश्चित प्राचीन हैं। पाणिनि के पश्चात् भी अनेक व्याकरण-प्रवक्ता हुए हैं। पर सारे उपलब्ध व्याकरणों में मूर्धन्य, पाणिनीय व्याकरण है। इसकी श्रेष्ठता के कारण ही इससे प्राचीन व्याकरण लुप्त हो गए। पाणिनि मुनि प्रायः भारत युद्ध के 300 वर्षों के अभ्यन्तर हुए हैं। इन्होंने अपने ग्रन्थ का नाम 'शब्दानुशासन' रक्खा है। यही ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' 'पाणिनीयाष्टक' तथा 'वृत्तिसूत्र' भी कहा जाता रहा है। पाणिनीय व्याकरण में कहीं-कहीं कोई बात कहने से छूट गई थी तो उस त्रुटि की पूर्ति कात्यायन, क्रोष्टा, वाडव, सुनाग आदि ने वार्तिक बनाकर की है। इन वार्तिककारों के काल विभिन्न हैं। उनके ठीक जानने के साधन अभी उपहृत नहीं हुए हैं।

इस पाणिनीय व्याकरण (सूत्र व वार्तिकों) पर प्रांजल महती व्याख्या महामुनि पतंजलि ने लिखी है। उनका ग्रन्थ 'महाभाष्यम्' नाम से विख्यात हैं। ये लगभग 1500 वर्ष विक्रम पूर्व हुए प्रतीत होते हैं। पाणिनीय व्याकरण का मर्म, महाभाष्य से ही जाना जा सकता है। महाभाष्य सकल संस्कृत वाङ्मय में अपने ढंग का निराला ग्रन्थ है।

पाणिनि के काल से लगभग 16वीं विक्रम शती तक पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन अष्टाध्यायी-महाभाष्य से होता रहा। सारे प्रसिद्ध संस्कृत कवियों व रचयिताओं ने इसी क्रम से इस ग्रन्थ को पढ़ा था।

साधनिका में सहायता के लिये प्रक्रिया-ग्रन्थों को निर्माण हुआ। प्रक्रिया के अनेक ग्रन्थ रचे गये। वे आरम्भ में केवली साधनिका में सहायक थे। व्याकरण का अध्ययन प्राचीन शैली से ही हो रहा था। परन्तु भट्टोजि दीक्षित ने प्राचीन परिपाटी का लोप करके, प्रक्रिया-परिपाटी प्रवृत्त कर दी। यह महान् अनर्थ हो गया और इसने व्याकरण को दुरूह से दुरूहतर बना दिया। लगभग चार शतियों से चले हुए इस विभ्राट् का परिहार स्वामी विरजानन्द सरस्वती ने किया।

व्याकरणाध्ययन-शैली-

शब्दशास्त्र का विषय अतीव विस्तृत है। वेदों से आरम्भ करके यावत् शिष्ट ग्रन्थ इसका विषय है। इसमें वर्ण–विकार के उत्सर्गरूप सिद्धान्त ही दुर्ज्ञेय हैं, अपवादों की तो कथा ही क्या है। ऐसे महान् विषय को अनुपम लोकोपकारक उपज्ञाऽऽगार, प्रतिभा के धनी, महामहिम–मण्डित श्री पाणिनि मुनि ने साढ़े नो सौ अनुष्टुपों में बांध दिया है। पाणिनीयाष्टक क्या है, गागर में सागर है। इतना बिलक्षण संक्षेप कोई जादू के बल से नहीं हो गया है। प्रत्याहार, अनुबन्ध, परिभाषाएं तथा अनुवृत्ति आदि की पद्धतियों के साहाय्य से ही यह असम्भवनीय चमत्कार सम्भव हो सका है। वैयाकरण जानते हैं कि सूत्रों के पौर्वापर्य का भी विशेष महत्व है। यदि आचार्य अनुवृत्ति, पौर्वापर्य, षष्ठ अध्याय की आभीय असिद्धताओं एवं अष्टमाध्याय की त्रैपादिक असिद्धताओं की विलक्षण व्यवस्थाएं न बांध पाते तो यह ग्रन्थ सम्भवतः 5000 श्लोकों से न्यून कदापि न होता। अनुवृत्तियों का माहात्म्य विस्मयजनक है। एक उदाहरण ही यहां पर्याप्त होगा। आचार्य का एक सूत्र है–'आद् गुणः' (6–8–84) इसमें केवल तीन अक्षर हैं। यदि अनुवृत्ति की परिपाटी न होती तो आचार्य को 'आदचि पूर्वपरयोरेको गुणः संहितायाम्, अयं गुणः पूर्वादिवत् परान्तवच्च'–इस रूप में 29 अक्षरों में यह नियम लिखना पड़ता। इस अनुवृत्ति देवी ही की महिमा है कि कण्ठ करने का विषय अतीव संक्षिप्त हो गया। अन्यथा तीन अक्षरों के स्थान में 29 अक्षर घोटने पड़ते। यदि संस्कृत के व्याकरण को इस युग में शेष रखना है तो श्री पाणिनि–स्थापित एक नोट के सदृश है। जो लोग सूत्रक्रम का अनादर करके कौमुदी–क्रम में श्रद्धा रखते हैं, वे अनर्घ मूलग्रन्थ को लुप्त करके सहायभूत नोटमात्र से अध्ययन–अध्यापन के प्रचारकों के सर्वथा समान हैं, भिन्न नहीं।

शब्दानुशासन (अष्टाध्यायी) विषयक श्रद्धा विरजानन्द जी को स्वगुरुवर्य स्वा0 पूर्णानन्द जी से दायभाग में प्राप्त हुई थी। काशी में उनको अष्टाध्यायी के कोई–कोई प्रकरण कण्ठस्थ भी थे। पता नहीं इन प्रकरणों को स्वामी पूर्णानन्द जी ने सिखाया था अथवा महाभाष्य की खोज करते हुए उन्हें अष्टाध्यायी के कुछ पृष्ठ मिल गये थे अथवा महाभाष्य की सहायता से उन्होंने किसी–किसी स्थल का सूत्रपाठ व्यवस्थित कर दिया था। मथुरा में सूत्र–क्रम की श्रेष्ठता की चर्चा वे प्रायः छात्रों से किया करते थे।

मथुरा–निवास–काल में मदनमोहनजी के मन्दिर के अध्यक्ष गोस्वामी पुरुषोत्तमलाल के पुत्र रमणलाल को कुछ काल तक दण्डीजी शिविका में बैठकर पढ़ाने जाया करते थे। एक दिन जाते हुए मार्ग में एक दशग्रन्थी दाक्षिणात्य ऋग्वेदी ब्राह्मण को अष्टाध्यायी सूत्रपाठ करते सुना। उन्होंने 4–5 दिन उस ब्राह्मण को अपने स्थान पर बुलाकर सूत्र–पाठ का पारायण सुना। उस सूत्रपाठ में यत्र–तत्र अशुद्धियां थीं। दण्डीजी ने पुस्तक मंगवाकर सुनी। वह भी अशुद्ध थी। वह ब्राह्मण दण्डीजी के बताये पाठों को पाठान्तर कहता था। पर वस्तुतः उस ब्राह्मणके अभ्यस्त पाठ अपपाठ थे। दण्डीजी इसके अनन्तर भी अनेक वर्ष नवीन ग्रन्थ पढ़ाते रहे। हां! प्राचीन ग्रन्थों का गौरव छात्रों के हृदयों पर अंकित करते रहते थे।

इस सूत्रपाठ की प्राप्ति ने अपना पूर्ण फल सं0 1916 में दिखाया, जैसाकि हम आगे देखेंगे।

इस उपलब्धि का काल हमें ज्ञात नहीं हो सका। कोई मथुरावासी सज्जन रमणलाल जी के परिव्राजकाचार्यजी से अध्ययन के काल को जान सकें, तो बहुत अच्छा है।

–(शेष अगले अंक में)

गो-रक्षा

लेखक: स्वामी सत्यानन्द महाराज

श्री दयानन्द जी ही पहले महापुरुष थे, जिन्होंने गोमाता को बचाने के लिये एक संगठित सभा स्थापित की। इसके पहले भारत में कोई भी ऐसी सभा न थी। इस सभा का नाम उन्होंने रक्खा था, गोकृष्यादि रक्षिणी सभा। कृषि शब्द को साथ मिलाकर महाराज ने धर्म के साथ उपयोगिता का भी संयोग कर दिया और इसका आर्थिक रूप भी बन गया। उनकी उस उदार नीति से मुसलमान, ईसाई और पारसी आदि सभी सज्जन सन्तुष्ट थे। गो वध बन्द करने में उनका साथ देने को तैयार थे। महाराज के जीवन के अन्तिम वर्षों में यह सभा स्थापित हुई थी। उसका काम बड़े उत्साह के साथ हो रहा था। यदि विधाता के विधान में दयानन्द का जीवन एक-वर्ष और बना रहता तो गो हत्या सर्वथा बन्द हो जाती

श्री महाराज स्वयं गो-रक्षा को धर्म का एक अंग मानते थे। उनका यह भाव इन शब्दों से प्रकट होता है-"जब सबको लाभ और सुख ही में प्रसन्नता है, तो बिना अपराध किसी प्राणी के प्राण अपहरण करके अपना पोषण करना सत्पुरुषों के सामने निन्दित कर्म क्यों न समझा जाय? सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर इस सृष्टि के मनुष्यों की आत्माओं में अपनी दया और न्याय का प्रकाश करे जिससे सभी दयावान् और न्यायशील बन कर सर्वोपकारक काम करें। स्वार्थ और पक्षपात को छोड़कर कृपापात्र गौ आदि पशुओं का विनाश न करे, जिससे दूध की प्राप्ति और खेती आदि कामों की सिद्धि से सारे मनुष्य आनन्द में रहें।"

गोचर-भूमियों के बन्द हो जाने पर वे लिखते हैं-"कोई गाय आदि पशु (यदि) सरकारी जंगल में जाकर घास पात खावे तो उसकी और उसके स्वामी की दुर्दशा होती है। जंगल में आग लग जावे तो चिन्ता नहीं, किन्तु पशु न खाने पावें। ध्यान देकर सुनिये, जैसा दुःख-सुख अपने आपको होता है, वैसा ही दूसरों को भी समझा कीजिये। यह भी ध्यान में रखिये कि पशुओं से और खेती-बारी आदि का काम करने वाले मनुष्यों के अधिक पुरुषार्थ ही से राजा का ऐश्वर्य बहुत बढ़ता है। इस के विपरीत करने से वह नष्ट हो जाता है।" प्रजा से राजा इसलिये कर लेता है कि उनकी यथावत् रक्षा करेगा, न इसलिये कि प्रजा के सुखकारक गाय आदि पशुओं का नाश किया जाय। आज तक तो जो हो गया, परन्तु आगे को आँखें खोलिये। हानिकारक कर्मों को न कीजिये और न किसी को करने ही दीजिये।"

वे फिर कहते हैं-"स्वार्थी लोग तो दूसरों को हानि पहुँचा कर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। परन्तु सज्जन लोगो, आप इन अनाथ पशुओं की रक्षा तन-मन-धन से क्यों नहीं करते हो? धन्य है भारत के आर्यजनों को, जिन्होंने ईश्वर के नियमानुसार परोपकार ही में तन-मन-धन लगाया और अब भी लगाते हैं। परोपकार के कारण आर्य राजे, महाराजे, धनी जन आधी भूमि में जंगल रक्खा करते थे,

जिससे पशुओं की पूरी रक्षा होती और पुष्कल दूध मिला करता। सुनो बन्धुवर्ग, यदि आपका तन–मन–धन गाय आदि उपकारक पशुओं की रक्षा में न लगे, तो ये किस काम के हैं? देखो, परमात्मा ने विश्व में सारे पदार्थ परोपकार ही के लिये रच रक्खे हैं। आप भी इस पुण्य कर्म में, परोपकार में, अपना सर्वस्व प्रदान कर दीजिये।''

श्री दयानन्द जी उपयोगिता (आर्थिक लाभ) के सिद्धान्त से भी गोरक्षण की महत्ता सिद्ध किया करते थे। इस विषय में उनकी युक्तियाँ आगे दी जाती हैं–''कोई गाय दो सेर दूध देती है और बीस सेर। यदि औसत ग्यारह सेर दूध की रखली जाय तो एक मास में एक गाय का दूध सवा आठ मन होता है। कोई गाय छः मास दूध देती है कोई अठारह मास। दूध देने की औसत बारह मास नियत कर लीजिये। बारह मास का दूध निन्नानवे मन होता है। एक मनुष्य की तृप्ति के लिये दो सेर दूध की खीर पर्याप्त हुआ करती है। इस प्रकार गाय के एक वर्ष भर के दूध से एकबार पच्चीस सहस्र सात सौ चालीस मनुष्य तृप्त होते हैं। यदि उसकी पीढ़ियों का विचार किया जाय तो एक गाय से अगणित जनों का पालन होता है।''

श्रीपरमहंस जी एक दूसरे प्रकार से भी इसकी उपयोगिता सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं–''दो ही पदार्थों से मनुष्य के प्राणों की रक्षा, जीवन, सुख, बल, विद्या और दूसरे आच्छादन से। पहले के अभाव से प्राण–नाश हो जाता है, और दूसरे के न होने पर अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। देखिये, गौ आदि पशु सूखा घास–पात खाय मनुष्यों के प्राण–धारण करने का साधन, अन्न–पान, दूध प्रदान करते हैं। बैलगाड़ी और हल को खींच कर अनेक प्रकार का अन्न उत्पन्न कर देते हैं, जिससे मनुष्यों का पालन होता है और वे बल, बुद्धि तथा शक्ति–सम्पन्न हो जाते हैं। गौ आदि पशु कितने कोमल हैं कि मनुष्यों के साथ सन्तान और मित्रों की भांति विश्वास रखते और प्रेम करते हैं। उन्हें जहाँ बांधो, वहीं बंधे रहेंगे। जिधर चलाओ, उसी ओर चलेंगे। जहाँ से हटाओ, हट जायँगे और देखने और पुचकारने पर पास चले आवेंगे।''

''ये जीते जी तो मनुष्य की रक्षा करते ही हैं, परन्तु मरने पर भी उनका चमड़ा काँटों और कंकड़ों आदि से मनुष्य के पांव को बचाता है। इनका जीवन और मरण सब कुछ मनुष्यों की रक्षा ही के लिये हैं। ऐसे शुभ गुणयुक्त पशुओं का हनन करके जो जन अपना पेट भरते हैं, वे सारे संसार का अपकार करते हैं। इसी कारण से आर्य लोग ब्रह्मा से लेकर आज तक पशु–हिंसा में पाप और अधर्म समझते आये हैं।''

''गौ आदि पशुओं की रक्षा करने से अन्न मंहगा नहीं होने पाता। देश में दूध दही अधिक हो तो निर्धन को भी सुगमता से मिल जाता है जिससे अधिक अन्न नहीं खाया जा सकता। इससे अनेक रोग भी नष्ट हो जाते हैं।''

गोकृष्यादि रक्षिणी सभा स्थापित करके श्री स्वामीजी ने गो–रक्षा पर ही अधिक ध्यान दिया था। वैसे तो वे दूसरे पशुओं की रक्षा के लिये अनुकम्पा का प्रबल भाव रखते थे, परन्तु उनका वचन है–''वर्त्तमान में परोपकारक गौ की रक्षा में मुख्य तात्पर्य है।''

लार्डरिपन महोदय के शासन–काल में श्री स्वामीजी इस यत्न में थे कि भारत की जनता के

हस्ताक्षर कराकर इंग्लैंड में भेजे जायँ और गो हत्या सर्वथा बंद करा दी जाय। हस्ताक्षर करने वालों में ईसाई, मुसलमान और पारसी आदि भी सम्मिलित थे। उस हस्ताक्षर-पत्र के साथ महाराज का जो व्याख्यान छपा था, उसका भाग यहाँ दिया जाता है-"ओम्। जगत् में ऐसा कौन मनुष्य है जो सुख-प्राप्ति में प्रसन्न और दुःख प्राप्ति में दुःखित न होता हो? जैसा अपने ऊपर कोई उपकार करे तो आनन्द होता है, ऐसे ही दूसरों का उपकार करने पर आनन्दित होना चाहिए, क्या भूगोल भर में कभी कोई मनुष्य ऐसा था, अब है, अथवा आगे होगा जो परोपकार-रूप धर्म पर हानि-रूप अधर्म के बिना धर्माधर्म का कोई अन्य स्वरूप सिद्ध कर सके?

"वे महाशय जन धन्य हैं जो अपने तन-मन-धन से संसार का अधिक उपकार साधित करते हैं। वे लोग निन्दनीय हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थवश होकर अपने तन-मन और धन से जग में पर-हानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं। अल्प लाभ के कारण महाहानि कर बैठना सृष्टि-क्रम के प्रतिकूल हैं।"

"विश्व भर में दो ही पदार्थ जीवन का मूल हैं-एक अन्न और दूसरा पान। मनुष्य को खान-पान पुष्कल प्राप्त हो, इस अभिप्राय से आर्यावर्त्त के राजे-महाराजे और प्रजा के जन गाय आदि महोपकारक पशुओं का न तो आप वध करते और न ही किसी दूसरे को करने देते थे। अब तक भी वे गाय और भैंस का हनन नहीं होने देते। इनकी रक्षा से अन्न-पान की बहुत ही वृद्धि होती है, जिससे सर्व साधारण का सुख-पूर्वक निर्वाह हो सकता है। राजा-प्रजा को जितनी हानि इनकी हत्या से होती है, उतनी किसी भी दूसरे कर्म से नहीं हो सकती।"

❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती		महापुरुषों की पुण्यतिथि	
डॉ0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी	6 जुलाई	राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन	1 जुलाई
मंगल पाण्डे	19 जुलाई	स्वामी विवेकानन्द	4 जुलाई
चन्द्रशेखर आजाद	23 जुलाई	भाई महाराजसिंह	5 जुलाई
लोकमान्य बालगंगाधर तिलक	23 जुलाई	ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	29 जुलाई
		मुंशी प्रेमचन्द	31 जुलाई

26 जुलाई कारगिल युद्ध (1999)
27 जुलाई गुरू पूर्णिमा

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

पक्षपात और द्वेष से धर्महानि

लेखक: सूरजभान आर्य

यद्यपि मनुष्यों ने आजकल पहले की अपेक्षा बहुत कुछ सभ्यता प्राप्त कर ली है और अब धर्म के नाम पर युद्ध होना और लाखों मनुष्यों का सिर कटना बन्द हो गया है, यही नहीं, अब राजा लोग भी अपनी प्रजा में अपना धर्म जबरदस्ती नहीं फैलाते हैं। अब तो सभी राज्यों में और विशेष करके हमारे देश में प्रजा को प्रत्येक धार्मिक बात में पूरी-पूरी स्वतंत्रता प्राप्त है। परन्तु यह सब होने पर भी बहुत से लोग धर्म के नाम पर अब तक तीसमारखाँ बनने से बाज नहीं आते हैं और व्यर्थ ही लड़ते मरते रहते हैं। कोई-कोई लोग धर्म के नाम पर इतने पागल बन जाते हैं कि भिन्न मतों के जिन कार्यों को वे लौकिक व्यवहार में खुशी से सहन करते हैं, उन ही कामों को धर्म के नाम पर होने से किसी प्रकार भी सहन नहीं कर सकते हैं और एकदम मरने मारने को खड़े हो जाते हैं। जैसे कि ब्याह-शादी या अन्य किसी लौकिक कार्य में हिन्दू लोग कैसा ही जुलूस निकालें, कैसे ही बाजे बजवावें, कैसी ही बदमाश वेश्याओं का नाच कराते हुए और धूमधाम मचाते हुए मस्जिदों के पास से निकलें, परन्तु इससे मुसलमान लोग जरा भी बुरा नहीं मानते हैं, बल्कि इन नाच-तमाशों और जुलूसों मे वे बहुत खुशी के साथ शामिल होते हैं और सहायता पहुंचाते हैं, परन्तु जब वही हिन्दू धार्मिक जुलूस निकालते हैं तब वे चाहे कितना ही कम शोर मचावें, कैसा ही हल्का बाजा बजावें और कैसी ही शान्ति के साथ मस्जिदों के पास से गुजरें, परन्तु उनकी यह कारवाई मुसलमानों को जराभी सहन नहीं होती है और वे नमाज पढ़ने में खलले पड़ने आदि किसी न किसी बहाने से उनसे गहरी लड़ाई ठान देते हैं।

इसी तरह नित्य ही देखने में आता है कि बहुत लोग पीपल की टहनियाँ तोड़ तोड़कर उनके पत्ते ऊँटों या बकरियों को चराते हैं और औषधि के लिए तो लोग पीपल की छाल तक को छील छील कर ले जाते हैं; फिर भी इससे किसी हिन्दू को जरा भी बुरा नहीं लगता है, परन्तु मुहर्रम के दिनों मुसलमानों के ताजिए निकलने पर अगर रास्ते में कोई पीपल का पेड़ आ जाता है तो हिन्दू लोग लाठियाँ ले ले कर इकट्ठे हो जाते हैं और जोश में आकर कहने लगते हैं कि अगर ताजिए से टकरा कर इस पीपल का एक पत्ता भी टूटा तो यहीं तमाशा बतला देंगे! इसी प्रकार हरिद्वार के मेले में हिन्दुओं के ऐसे हजारों दिगम्बर साधु आते हैं जो दो अंगुल की लंगोटी भी नहीं लगाते हैं, छोटे बच्चों की तरह बिलकुल नंग-धडंग फिरा करते हैं। ये साधु 'नागा' साधु कहलाते हैं और हिन्दुओं में बड़ी भक्ति के साथ पूजे जाते हैं। इसी प्रकार हिन्दू लोग महादेव के लिंग को मंदिरों में स्थापित करके उसके विषय में अनेक ऐसी ऐसी बातें भी कहते हैं, जिनका लिखना हम योग्य नहीं समझते हैं। कृष्ण महाराज का चीरहरण-नाटक करके स्त्रियों का भी नग्नरूप दिखलाते हैं और मन्दिरों में भी चीरहरण लीला की तस्वीरें खिंचवाते हैं; परन्तु ये ही हिन्दू

जैनियों की ऐसी मूत्तियाँ देखकर अपना धर्मभ्रष्ट हो जाना समझते हैं जिनमें उपस्थ इन्द्रियों का भी चिह्न नहीं बनाया जाता है और जिस मूर्त्ति के देखने से इस बात का खयाल भी दिल पर नहीं आता है कि यह मूर्त्ति किसी बिलकुल नग्न पुरुष की है। किसी किसी जगह तो ये हिन्दू जैनियों की ऐसी मूर्त्तियों का उत्सव निकलने पर मरने मारने को तैयार हो जाते हैं और यदि उनका कुछ वश नहीं चलता है तो उस दिन दुकानें बन्द करके घरों में छिप जाते हैं, इसलिए कि जिससे जैनियों की वह नग्न मूर्त्ति उनकी आँखों के सामने न आने पावे और वे धर्मभ्रष्ट होने से बच जायँ।

इस प्रकार यद्यपि आजकल सब लोग अपने अपने धर्म को परम पिता परमेश्वर का चलाया हुआ और मनुष्यों का परम कल्याण करने वाला बतलाते हैं, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो ये सभी मत मनुष्यों का सर्वनाश करनेवाले और महा अशान्ति फैलानेवाले बन गये हैं। यहाँ तक कि जो भिन्न मत आपस में प्रेम के साथ रहते हैं और परस्पर के सब व्यवहार शान्ति के साथ किया करते हैं, वे ही मत की कोई जरासी बात छिड़ जाने पर अकड़ने लगते हैं और अपनी अपनी दलबन्दी करके लड़ने-मरने को तैयार हो जाते हैं। यही कारण है कि हिन्दू-मुसलमानों का कोई भी त्यौहार आते ही सरकार को फिकर हो जाती है कि कहीं कोई दंगा-फसाद न हो जाय, इसलिए ऐसे मौकों पर सरकार विशेष प्रबन्ध करती है और पूरा-पूरा पहरा रखती है; परन्तु इतने पर भी कहीं न कहीं दंगा-फसाद हो ही जाता है। इसके विपरीत बाजारों, प्रदर्शनियों और ऐसे ही अन्य लौकिक मेलों में जहाँ अनेक धर्मों और अनेक स्थानों के लाखों आदमी इकटठे होते हैं, कभी किसी प्रकार की तकरार नहीं होती है। इससे साफ जाहिर होता है कि आजकल सम्प्रदाय ही लड़ाई झगड़े की मुख्य जड़ बन गया है। यही कारण है कि जहाँ धर्म का नाम नहीं आता है वहाँ तो लौकिक कामों के लिए चाहे जितने आदमी इकट्ठे हो जायँ पर लड़ाई का कुछ भी भय नहीं रहता है, सब काम शान्तिपूर्वक हो जाते हैं, परन्तु जहाँ सम्प्रदाय का ताल्लुक रहता है वहाँ भिन्न भिन्न धर्मवालों में लड़ाई-दंगा होने की पूरी पूरी आशंका रहती है।

धर्म की इस खैंचातानी ने आजकल यहाँ तक जोर पकड़ा है कि जिससे एक धर्मवाले चिढ़ते हैं उसको दूसरे धर्मवाले अवश्य ही करने लगते हैं, यहाँ तक कि इस कार्य में वे अपना नुकसान भी सहन कर लेते हैं। जैसे कि अरब देश में ईद के दिन गाय की कुर्बानी नहीं होती है और यदि होती भी है तो बहुत कम। वहाँ ईद के दिन अक्सर मेंढ़े ही मारे जाते हैं; परन्तु इस देश में जहाँ गायों से पैदा हुए बैलों से खेती होती है और जहाँ बहुत से मुसलमान भी खेती करते हैं, इस कारण जहाँ गायों के मारे जाने से जैसा नुकसान हिन्दुओं को होता है वैसा ही मुसलमानों को भी होता है-गाय की कुर्बानी की जाती है। यहाँ के मुसलमान किसान तक गाय के सिवा अन्य किसी जीव की कुर्बानी करना पसन्द नहीं करते हैं। कारण इसका यह है कि हिन्दू लोग गाय को पूज्य मानते हैं और उसकी कुर्बानी होने पर चिढ़ते हैं। ज्यों ज्यों हिन्दूलोग गाय की कुर्बानी होने पर चिढ़ते हैं त्यों त्यों मुसलमान लोग पहले से अधिक गायों की कुर्बानी करते हैं और गायों के मारे जाने से दूध आदि की तकलीफ उठाते हुए भी गाय की कुर्बानी करके बहुत

खुश होते हैं। यदि हिन्दू मना करते हैं तो वे मरने मारने को खड़े हो जाते हैं। इधर हमारे हिन्दू भाई भी विलक्षण प्रकृति के हैं। वे यह बात भलीभांति जानते हुए भी कि मुसलमान लोग नित्य ही गायों को मारकर खाते हैं, यों तो उनके हाथ बेखटके गायें बेचते रहते हैं, परन्तु ईद के दिन धर्म के नाम पर कुर्बानी होने पर आपेसे बाहर हो जाते हैं और कभी-कभी तो गाय की कुर्बानी की जगह अपनी बलि तक देने को तैयार हो जाते हैं। परन्तु ईद का दिन बीत जाने पर फिर उन्हीं मुसलमानों के हाथ गायें बेचने लगते हैं जो नित्य उनको मार मार कर खाते हैं। इसके सिवा वे ही हिन्दूलोग जो कि गाय को देवता समझकर ईद के दिन खून-खराबा करते हैं अपने घर की गायों को अच्छी तरह घास भी नहीं देते हैं और लाठियों से उनकी पूजा किया करते हैं, यही नहीं वे उनका सारा दूध निकालकर उनके बच्चों को भूखा तड़पाते हैं। कहने का मतलब यह है कि वे उनके पालनपोषण में बहुत ही लापरवाही दिखलाते हैं; परन्तु यूरोप और अमेरिका में जहाँ पर गायें न तो देवता ही समझी जाती हैं और न पूजी ही जाती हैं दिन पर दिन उनकी वृद्धि हो रही है और वहाँ की एक एक गाय इतना दूध देती है कि यहाँ की पांच छह गायें भी उतना नहीं दे सकती हैं। क्योंकि वहाँ पशुओं के पालन-पोषण की और खूब ध्यान दिया जाता है और उनकी वृद्धि के लिए खूब ही कोशिश की जाती हैं। वहाँ गायें भी इतनी अधिक हैं कि वहाँ के लोग गाय का दूध पीते हैं और बहुधा गायें ही पालते हैं; परन्तु इस देश में जहाँ गाय देवता समझी जाती हैं बहुत कम लोग गायों को पालते हैं। यहाँ के लोग बहुध भैंस ही पालते, भैंस ही का दूध पीते और भैंस ही का घी खाते हैं। परन्तु यूरोप और अमेरिका में भैंस का दूध तो कोई जानता ही नहीं है-सभी गायें पालते हैं और गायों का दूध पीते हैं। हिन्दुस्तान की गौशालाओं को देखने से हिन्दुओं की गौ-भक्ति की बिलकुल कलई खुल जाती है। उन बेचारियों को इतना कम खाने को मिलता है कि उनके सब पंजर बाहर निकले दिखाई देते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दुस्तान में हिन्दुओं का गाय को देवता मानना और मुसलमानों का उसकी कुर्बानी करना केवल धर्म के झगड़े के कारण है, जिससे दोनों को नुकसान पहुँच रहा है और देश भर की खेती में भारी विघ्न पड़ रहा है।

धर्म के इस पक्षपात ने बढ़ते-बढ़ते अब धर्मपालन में यहाँ तक गड़बड़ी मचा दी है कि अब पक्षपात का नाम ही धर्म रह गया है। अर्थात् एक धर्म में दूसरे धर्म जो जो बातें विलक्षण हैं चाहे वे कैसी ही तुच्छ और साधारण क्यों न हों, केवल उनका ही पालन करना जरूरी हो गया है और जो उन बातों का पालन करते हैं वे ही धर्मात्मा समझे जाते हैं। परन्तु जो बातें सभी धर्मों में बतलाई गई हैं चाहे वे कैसी ही आवश्यक और लाभकारी क्यों न हों, उनका पालन करना अनावश्यक समझा जाने लगा है-यहाँ तक कि वे बातें धार्मिक बातों में ही नहीं गिनी जाती हैं और न उनके पालन करने से कोई धर्मात्मा ही कहा जा सकता है। जैसे झूठ न बोलना और चोरी न करना; परन्तु सभी धर्मों के मुख्य सिद्धान्त हो जाने से अब ये बातें धार्मिक नहीं रही हैं, वरन् मानवी सभ्यता की बहुत मामूली बातें मानी जाने लगी हैं। इसीलिए आजकल चाहे कोई कितना ही झूठ बोले, कितना ही धोखा और फरेब करे, लोगों का माल मारे और जाहिरा तौरपर व्यभिचार करे, तो भी वह धर्मभ्रष्ट नहीं समझा जाता है; परन्तु जब कोई उन

बातों के विरुद्ध चलने लगता है जिनके कारण धर्मों के बीच में पक्षपात चल रहा है और द्वेष खड़ा हो रहा है तो अवश्य ही वह पूरा पूरा धर्मभ्रष्ट हो जाता है। जैसे कोई हिन्दू लाख झूठ बोलता हो और लोगों का माल भी मारता हो; परन्तु अन्य धर्मवालों की छुई हुई कोई वस्तु न खाता हो और उनसे पल्ला भिड़ जाने पर तुरन्त ही नहाता हो, तो वह बड़ा भारी धर्मात्मा माना जाता है और जो हिन्दू झूठ फरेब से परे रहता है, बिल्कुल सत्य का व्यवहार रखता है, अपनी स्त्री के सिवा दुनियाभर की सभी स्त्रियों को माँ, बहिन के समान समझता है और वेश्याआं का मुंह तक नहीं देखना चाहता है, परन्तु उस फर्श पर बैठकर पानी पी लेता है जिस पर कोई मुसलमान बैठा हो वह महा अधर्मी हो जाता है; और यदि वह उस लोटे-गिलास से पानी पी ले जो क़िसी मुसलमान ने छू दिया हो तो वह हिन्दू ही नहीं रहता है और तुरन्त ही जाति से पतित कर देने योग्य हो जाता है।

इसी प्रकार जब तक कोई हिन्दू मुसलमान वेश्या के साथ व्यभिचार तो करता है; पर उसके हाथ की कोई चीज नहीं खाता है तब तक पक्का हिन्दू रहता है, किन्तु यदि उस वेश्या के हाथ की मिठाई या पान खाने लगता है तो तत्काल ही धर्मभ्रष्ट हो जाता है और उसके विषय में जाति में यह चर्चा होने लगती है कि "व्यभिचार तो हजारों लाखों हिन्दू करते हैं, परन्तु वे अपने धर्म को नहीं खोते हैं। लेकिन यह बेईमान तो अपना धर्म कर्म भी भ्रष्ट कर चुका है और मुसलमान वेश्याओं के हाथ की छुई मिठाई तथा पान तक खाने लगा है।" हिन्दुओं की इस बात से साफ जाहिर है कि वे व्यभिचार करने में तो धर्मभ्रष्ट होना नहीं मानते हैं; परन्तु मुसलमानके हाथ की छुई हुई मिठाई खा लेने से अपने को धर्मच्युत समझते हैं। कारण इसका यही है विभिन्न धर्मियों में आपस में बड़े-बड़े झगड़े और खून खराबे होते रहने से अन्त में इतना अधिक पक्षपात और द्वेष बढ़ गया है कि जिन बातों में आपस में विरोध है वे ही धर्म की बातें रह गई हैं; परन्तु जो बातें सभी धर्मों में समान रूप से मानी जाती हैं उनका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। इसीलिए झूठ बोलना और चोरी तथा व्यभिचार करना पाप नहीं गिना जाता है, क्योंकि इन कामों को सभी धर्मों ने पाप कहा है।

इसी तरह मुसलमानों में भी देख लीजिए कि यदि कोई मुसलमान चोरी, व्यभिचार, झूठ, फरेब आदि सब कुछ करता है, दूसरों का माल मारता है और कर्ज लेकर एक कौड़ी भी वापिस नहीं देना चाहता है, परन्तु सूद नहीं लेता है तो उसके मुसलमानपने में कुछ फरक नहीं आता है; पर जो मुसलमान बिलकुल सत्य का व्यवहार करता है, किसी का एक पैसा नहीं मारता है और चोरी जारी भी नहीं करता है, परन्तु सूद जरूर खाता है, तो वह मुसलमान ही नहीं समझा जाता है। इसका कारण भी यही है कि चोरी जारी तो सभी धर्मों में पाप माना गया है, इसलिए इन बातों की तरफ लोगों का ध्यान नहीं जाता है, परन्तु सूद लेने को एक मुसलमान धर्म ही बुरा बतलाता है, इसलिए मुसलमानों को इसी का अधिक खयाल रखना पड़ता है। इन सब बातों का सारांश यही है कि धर्मों के बीच के झगड़े-फसादों के कारण मनुष्यों में पक्षपात और द्वेष फैल गया है और धर्म की जड़ कट गई है, अर्थात् धर्म की असली बातें तो धर्म से निकल गई हैं और आपस की विरोधी बातें धर्म की असली बातें बन गई हैं।

-(शेष अगले अंक में)

द्रव्य का उपयोग

लेखक: पं0 माधवराव

आजकल प्राय: ऐसा देखा जाता है कि धन, द्रव्य, अथवा सम्पत्ति के सम्बन्ध में बातचीत छिड़ने पर अनेक लोगों के अनेक विचार पाये जाते हैं। कोई तो वैराग्य धारण करके कह बैठते हैं कि धन बहुत ही बुरी वस्तु है, उससे अमुक अमुक हानियाँ होती हैं, अतएव उसे एक अत्यन्त तुच्छ और त्याज्य वस्तु समझना चाहिए। ऐसा कहनेवाले लोग ठीक उसी तरह के होते हैं, जो अंगूर के न मिलने के कारण उसे खट्टे कहा करते हैं। ये हृदय से तो 'भजकल्दार' का मन्त्र जपते रहते हैं, परन्तु कुछ न मिलने के कारण लोगों के सामने मुँह से अपनी त्यागवृत्ति का परिचय दिया करते हैं। एक प्रकार के लोग और होते हैं जिनका मत उक्त मत के बिलकुल विरुद्ध होता है। ये कहा करते हैं कि संसार में ईश्वर का यदि कोई सगा भाई है तो वह केवल धन–सम्पत्ति ही है। इनका यह कहना है कि बिना धन के हमारा कुछ भी–छोटे से छोटा भी–काम नहीं हो सकता, यहाँ तक कि हम बिना धन के खा पी भी नहीं सकते, सो नहीं सकते, बैठ नहीं सकते, चल नहीं सकते, और कहाँ तक कहें, सांस भी नहीं ले सकते! ये सब लोग धन की शक्ति का वर्णन करने में अत्युक्ति से काम किया करते है। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। इन दोनों प्रकार के लोगों का मत भ्रममूलक और अज्ञान से परिपूर्ण है। यथार्थ बात यह है कि धन न तो इनती तुच्छ और त्याज्य वस्तु है, जैसा कोई–कोई लोग लाचारी से कहा करते हैं, और न वह इतनी अधिक महत्वपूर्ण वस्तु है जिसके महत्त्व का दिग्दर्शन कराने के लिए बढ़–बढ़कर लम्बी चौड़ी बातें बनानी पड़े। हाँ इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि धन के विषय में अपात्रता और आलस्यजन्य घृणा रखने से काम नहीं चलेगा। हमको स्वीकार करना पड़ेगा कि धन एक उपयोगी वस्तु है। उसके बिना हमारा सांसारिक जीवन दु:खपूर्ण और कष्टमय हो जाता है। बहुतेरे लोग धन–कष्ट के कारण निराश होकर संसार को असार समझने लगते हैं। कोई–कोई तो धनाभाव के कारण अपने धनी पड़ोसियों से घृणा भी करने लगते हैं। जीवन–संग्राम में विजय–प्राप्ति करने के लिए प्रस्तुत लेखमाला में जितने साधन बतलाये जा चुके हैं अथवा आगे बतलाये जायँगे, उनमें अवस्थानुसार उपयुक्त धन का भी एक बड़ा भारी भाग है। सच बात तो यह है कि बिना धन के संसार में मनुष्य का व्यावहारिक जीवन शिथिल होकर किसी काम का नहीं रहता। इसलिए यही उचित है कि हम आलस्यमय विवादों के द्वारा द्रव्य या धन को तिरस्करणीय वस्तु न समझें, किन्तु सच्चे और खुले हृदय से संकोचरहित होकर यह मान लें कि धन एक उपयोगी वस्तु है जिसके न होने से मनुष्य की वही दशा होगी जो एक पंख रहित पक्षी की होती है।

सब लोग जानते हैं कि पैसे के लिए रात दिन अत्यधिक हाय हाय करते रहने का क्या फल होता है। अधिक लोभ तथा तृष्णा का बुरा परिणाम किसी से छिपा नहीं है। इसके साथ एक और भी

ध्यान देने योग्य बात यह है कि अधिक धनराशि होने के साथ कई बातों का डर बना रहता है। चिन्ता पीछा नहीं छोड़ती, चोरों के भय से रात को नींद नहीं आती, कुटुम्बीजनों में झगड़े लगे रहते है, इत्यादि। परन्तु यदि अधिक धन के साथ बहुत सी आपत्तियाँ लगी हुई हैं, तो सोचने की बात है कि क्या दरिद्रता के साथ कितनी ही भयंकर आपत्तियाँ नहीं लगी होतीं। ऐसा कहने का यही कारण है कि धन एक बड़ी भारी शक्ति है, और जब शक्ति के रहते हुए भी आपत्तियाँ आ सकती हैं, तब शक्ति के अभाव में अर्थात् दरिद्रता की दशा में तो फिर और भी अधिक अनर्थ हुआ करेंगे, क्योंकि "धनक्षये दीव्यति जाठराग्निः" और "छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति" का उदाहरण प्रतिदिन देखने में आता है। यदि धन के साथ एक आपत्ति है, तो दरिद्रता के साथ दस आपत्तियाँ अवश्य ही रहती हैं। देखिए, निर्धनता कितनी अनर्थकारिणी राक्षसी है। इसका वर्णन हमारे नीतिज्ञ पूर्वजों ने इस तरह किया है–

दरिद्रयाद्ह्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्वात्परिभ्रश्यते,
निःसत्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेददमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोकनिहतो बुद्धया परित्यज्यते,
निबुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामारूपदम्।।

अर्थात् "दरिद्रता के कारण संकोच और लज्जा आती है, लज्जा के कारण धैर्य चला जाता है, धैर्य के चले जाने से पराभव होता है, पराभव होने से खेद होता है, खेद होने से शोक और पश्चात्ताप होता है और शोक से क्षय अर्थात् नाश होता है, इसलिए दरिद्रता सब आपत्तियों की जननी है" इतना ही नहीं, दरिद्रता, निराशा और उदासीनता में बड़ी भारी मित्रता है–ये सब एक ही स्थान में निवास करते हैं। दरिद्रता एक ऐसी वस्तु है जिसका स्वीकार करना किसी को भी अच्छा नहीं लगेगा। दरिद्रता से दासत्व से दासत्व प्राप्त होता है और बुढ़ापे में धनदीन मनुष्य अपने कुटुम्ब और मित्रों को भारस्वरूप हो जाता है।

इसलिए धन को घृणा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। घृणा की दृष्टि से देखने योग्य वस्तु है धन की तृष्णा। धन तो बहुमूल्य वस्तु है। धन ही से हमारे सदाचरण की–ईमानदारी, न्यायप्रियता, उदारता, मितव्ययिता, दूरदर्शिता, परोपकार, आत्मत्याग इत्यादि की–परीक्षा होती है। यों तो धन सदैव से बहुमूल्य माना जाता है, परन्तु आजकल के विज्ञान युग में, और पश्चिमी सभ्यता की उत्तरोत्तर वृद्धि होने के कारण, उसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। समय ऐसा आ पहुँचा है कि बिना द्रव्य के अनेक सद्गुणों का विकास ही नहीं हो सकता। क्या व्यक्तिविषयक जीवन संग्राम में और क्या राष्ट्रिय जीवन–संग्राम में विजय–प्राप्ति के लिए द्रव्य एक बहुत बड़ा साधन है। समाचार–पत्रों के पढ़ने वाले जानते हैं कि हाल के यूरोपीय महायुद्ध में प्रतिदिन कई करोड़ रुपये स्वाहा हो रहे थे। यथार्थ में यह युद्ध यूरोप की आर्थिक शक्ति का एक अच्छा नमूना है। सारांश, प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने कुटुम्ब, समाज, देश और राष्ट्र के सांसारिक सुख के लिए द्रव्य का यथोचित उपयोग करे। इसके लिए

सबसे सहल युक्ति यही है कि प्रत्येक दशा में हमें अपनी आमदनी से खर्च कम करना चाहिए। स्मरण रहे कि धन का उचित उपयोग करने में–उसे कमाने में, उसके खर्च करने में, तथा बचत करने में–हो किसी भी मनुष्य की व्यावहारिक बुद्धि का पता चल सकता है। धन का उचित उपयोग ही व्यावहारिक बुद्धि की कसौटी है।

धन के विषय में हमें तीन बातों का विचार सदैव रखना चाहिए- (1) धन कैसे और किन उपायों से कमावें, (2) खर्च कैसे करें, और (3) कैसे बचावें। धनोपार्जन में सबसे पहले धैर्य रखने की आवश्यकता होती है। धैर्य न रखने से मनुष्य लोभी होकर उसके लिए बुरे कामों को भी करने के लिए तत्पर हो जाता है। धन कमाने का दूसरा महत्वपूर्ण उपाय यह है, कि आवश्यकता पड़ने पर हमें अपने बाप–दादों की काम करने की पुरानी और निरुपयोगी रीतियों को साहस के साथ त्याग देना चाहिए। नहीं तो कभी बहुत ही हानि उठानी होगी। धन कमाने की तीसरा उपाय यह है कि सब कामों को देश काल की आवश्यकता के अनुकूल ही करना चाहिए। खर्च करने में मनुष्य को विशेष सावधान रहना चाहिए क्योंकि इसी पर उसका भविष्य निर्भर है। खर्च करने की आवश्यकता हमें तीन कारणों से होती है, यथा प्राणरक्षा के लिए, अपनी इज्जत कायम रखने के लिए और कोई सत्कार्य करने के लिए। यदि इनको छोड़कर और किसी हेतु से खर्च किया जाय तो वह अपव्यय तथा धन का दुरुपयोग होगा। धन के बचाने के पहले यह देख लेना चाहिए कि हमारी सब आवश्यकतायें पूरी हो गईं कि नहीं। नहीं तो हमारी ऐसा देखा जाता है कि कोई मनुष्य अशर्फियां लुटाकर एक कौड़ी का मोह करने वाले भी होते हैं। हमें कुछ न कुछ बचाने के प्रयत्न में लगे रहना चाहिए, इस बात की कोई परवाह नहीं करनी चाहिए कि हम रोज बहुत नहीं बचा सकते। कितने ही धनहीन मनुष्य पुरुष कौड़ी कौड़ी जोड़कर धनवान् होते देखे गये हैं। और कुछ नहीं तो यह सोचकर तो अवश्य ही कुछ धन संचय करना चाहिए कि मनुष्य शरीर के साथ बहुत सी आपत्तियां लगी हुई हैं। जो मनुष्य अपनी पूरी आमदनी को खर्च कर डालता है उसे आर्थिक भाषा में मूर्ख कहते हैं क्योंकि वह अपने को जन्मभर दास बनाये रखने में आप ही सहायक होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि धन एक बड़ी भारी शक्ति है। धनवान् मनुष्य विद्या–हीन होने पर भी बहुत ही प्रभावशाली होता है। समाज में उसकी बातों का बहुत आदर होता है। बुद्धिमान् आदमी भी उसकी हाँ में हाँ मिलाया करते हैं। किसी ने ठीक कहा है कि "जिसके पास धन है वह मनुष्य कुलीन है, वह बड़ा अच्छा वक्ता और दर्शनीय पुरुष है, वह बड़ा भारी पण्डित भी है क्योंकि समस्त गुण कांचन अर्थात् द्रव्य के आश्रयभूत हैं।" निर्धन मनुष्य की बात उसके घर में भी कोई नहीं मानता और धनवान् मनुष्य दूसरों के घर में भी जाता है तो वहाँ उसकी देवता के समान पूजा होती है। इसीलिए किसी ने कहा है कि **"निज सदनहु नहि मानहीं, निर्धन जन को कोय। धनी जाय पर घर तऊ, सुरसम पूजा होय।"** इतना ही नहीं, वरन् यह भी देखा जाता है कि **"निरबुद्धी धनवान को मानत सकल जहान। लखि दरिद्र विद्वान को जग–जन करें गलान।"** धन को बहुत से लोग "बुराईयों की जड़" समझकर उसे घृणा की

दृष्टि से देखते हैं परन्तु यह उनकी भूल है। ''बुराईयों की जड़'' धन की तृष्णा और लोभ है, स्वयं धन नहीं। इसलिए विद्वानों ने धन को ''उत्तम सेवक'' और दुष्टखामी'' कहा है।

परन्तु इतना होने पर भी धनोपार्जन करते रहना ही हमारे जीवन का ध्येय तथा परम उद्देश्य नहीं है, मानलो कि हमारे पास अटूट सम्पत्ति हो गई है परन्तु हम रात दिन उसे उत्तरोत्तर बढ़ाने की चिन्ता में लगे हुए हैं, हमें खाना पीना नहीं सूझता और नींद भी नहीं आती। तब ऐसे धन से क्या लाभ होगा? कुछ नहीं, केवल हम जन्म भर कष्ट उठाने के ही मालिक रहेंगे, खाना और खर्च करना तो हमसे हो नहीं सकेगा। अन्त में जिस तरह मधुमक्खियों की दशा होती है वही दशा हमारी भी हो जायगी। हाथ मल मल कर पछताने के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगेगा। जन्म भर शरीर को कष्ट दे देकर जमा तो हम करेंगे, परन्तु उसका उचित उपयोग तथा उपभोग हम नहीं करने पावेंगे। और फिर जब अपने पास की अधिक सम्पत्ति का कुछ भी उपयोग नहीं हुआ, तब उसके होने से लाभ ही क्या है? जैसे अन्य मनुष्य सेर भर खाया करते हैं वैसे ही धनवान् भी सेर ही भर खाता है। सच पूछो तो धन का महत्व उसका उचित उपयोग करने से ही बढ़ता है।

जिस धन का कुछ उपयोग नहीं होता वह फेंक देने योग्य किसी तुच्छ कंकर से बढ़कर नहीं है। जिस धन से हम अपनी पराधीनता को नष्ट करके स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर सके, धन से हम अपने दारिद्रय-पीड़ित भाईयों के कष्टों को दूर न कर सके, तथा जिस धन से हम ईश्वर के विराट्स्वरूप संसार के किसी अंश को भी सुखी नहीं कर सके, उसे क्या कहना चाहिए। उसका 'धन' नाम ठीक होगा कि 'मिट्टी'? धन एक ऐसी वस्तु है जिसके अभाव में हमें बहुत ही दुःख होता है और धन केवल दुःखों को दूर करने के लिए ही कमाया जाता है। यदि यह बात सच है तो जिस धन के कमा लेने पर हमारे दुःखों की कमी न हो तो वह धन नहीं है। वह हमारे सिर पर एक प्रकार का बोझ है जो केवल हमारे मरने पर ही उतर सकता है, अन्यथा नहीं। जो मनुष्य अपार सम्पत्ति का स्वामी है परन्तु उसका कुछ भी सदुपयोग नहीं करता वह धनवान् नहीं है, वह किसी विशिष्ट जाति, देश या राष्ट्र का केवल गुमाश्ता या खजांची है। वह बेचारा जीते जी उस सब धन की पाई पाई का हिसाब रक्खेगा और मरने पर उसका 'चार्ज' किसी दूसरे को देकर इस संसार से विदा हो जायगा। उसकी सब आयु धन की रखवाली करने में ही नष्ट हो जावेगा। ऐसे मनुष्यों की स्थिति और जिन्दगी पर शोक है।

–(शेष अगले अंक में)

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष **2017 का वार्षिक शुल्क** बार-बार के पत्र लेखन तथा फोन द्वारा सूचना देने के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष **2017** तथा **2018** का वार्षिक शुल्क अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को जमा करायें। वर्ष 2017-2018 का वार्षिक विशेषांक **शान्ता** आप तक पहुँचाया जा चुका है। अतः आपसे पुनः निवेदन है कि आप शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भेजकर अपनी प्रत्येक माह की पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहें। आशा है पाठकगण अविलम्ब शुल्क जमा करेंगे।

–व्यवस्थापक

गतांक से आगे–

भगवान् श्री दत्तात्रेय जी द्वारा चौबीस गुरुओं से शिक्षा-ग्रहण

लेखकः पं० माधवराव

मधुमक्खी से शिक्षा– दत्तात्रेयजी ने मधुमक्खी से यह शिक्षा ग्रहण की कि मनुष्य किसी एक से बँधे नहीं और जिस प्रकार मधुमक्खी विभिन्न पुष्पों से, चाहे वे छोटे हों या बड़े, सार संग्रह करती है वैसे ही बुद्धिमान् पुरुष छोटे-बड़े सभी से सार सत्त्व को ग्रहण करे। साथ ही उसे संग्रही नहीं होना चाहिये, अन्यथा वह मधुमक्खी के समान अपना जीवन भी संग्रहीत धन के लोभ में गंवा बैठता है।

हाथी से शिक्षा– दत्तात्रेय जी ने हाथी से यह शिक्षा ग्रहण की कि जिस प्रकार शिकारी हाथी के माध्यम से ही हाथी को पकड़ता है और हाथी स्वजन के मोह में अपने को भी बन्धन में डाल देता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य को भी स्वजनों के मोह और मोहजनित भ्रम से बचना चाहिये; क्योंकि यही बन्धन का कारण हो जाता है।

मधु निकालने वाले से शिक्षा– मधु निकालनेवाले पुरुष से दत्तात्रेय जी ने यह शिक्षा ग्रहण की कि संसार के लोभी पुरुष बड़ी कठिनाई से धन-संचय तो करते हैं, किन्तु उसका स्वयं उपभोग नहीं कर पाते; जैसे मधु निकालनेवाले पुरुष का कष्ट से प्राप्त मधु कोई दूसरा ही ले लेता है। जैसे मधुहारी मधुमक्खी के द्वारा संचित मधु को उसके खाने के पहले ही साफ कर देता है, वैसे ही मधु निकालनेवाला भी धन के लोभ में मधु बेचकर स्वयं उसे भोगने से वंचित रह जाता है, उसी प्रकार लोभी और संग्रह की वृत्ति से मोहग्रस्त व्यक्ति भी स्वयं कष्टद्वारा उपार्जित और संग्रहीत धन का उपभोग स्वयं करने से वंचित रह जाता है।

हरिन से शिक्षा– हरिन से भगवान् दत्तात्रेयजी ने यह सीखा कि मनुष्य को कभी विषय-सम्बन्धी गीत, जिससे वासना जागे, नहीं सुनना चाहिये; क्योंकि जैसे हरिन व्याध के गीत से मोहित होकर बंध जाता है उसी प्रकार श्रुति-मधुर विषयवासना की ओर प्रवृत्त करनेवाले गीत, नृत्य, नाद, वचन अथवा शब्द से मनुष्य को विरत रहना चाहिये अन्यथा वह बन्धन और नाश का कारण होता है।

मछली से शिक्षा– मछली से भगवान् दत्तात्रेय जी ने जो शिक्षा ग्रहण की वह यह है कि जैसे मछली बंसी में लगे हुए मांस के टुकड़े के लोभ से अपना प्राण गंवा देती है, वैसे ही स्वाद का लोभी मनुष्य भी अपनी जिह्वा के वश में होकर प्राण गंवा देता है। विवेकी पुरुष को रसनेन्द्रिय को वश में कर लेना चाहिये।

पिंगला नाम की वेश्या से शिक्षा– स्वेच्छाचारिणी और रूपवती पिंगला नाम की वेश्या से भगवान् दत्तात्रेय जी ने यह शिक्षा ग्रहण की कि कभी–कभी निराशा भी वैराग्य का कारण हो जाती है। जिस प्रकार उस वेश्या को अपने व्यवसाय में निराशा होने पर वैराग्य उत्पन्न हो गया और वैराग्य होने पर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति में उसने एक गीत गाया, जिसका आशय यह था कि मनुष्य आशा की फांसी पर लटक रहा है, इसे तलवार की तरह काटनेवाली यदि कोई वस्तु है तो वह केवल वैराग्य ही है। पिंगला ने कहा कि मैं इन्द्रियों के अधीन होने के कारण इन दुष्ट पुरुषों के अधीन हो गयी, मेरे मोह का विस्तार तो देखो, मैं सचमुच मूर्ख हूँ। मेरा यह शरीर माया–मोह के हाथों बिक गया है। यह शरीर एक घर के समान है, इसमें हड्डियों के टेढ़े–तिरछे बाँस और खम्भे लगे हुए हैं, चमड़े और रोएँ तथा नाखूनों से यह छाया गया है। इसमें नौ दरवाजे हैं, जिनसे मल निकलते रहते हैं। इसमें संचित सम्पत्ति के नाम पर केवल मल और मूत्र ही है। अब मैं भगवान् का यह उपकार आदरपूर्वक स्वीकार करती हूँ कि उसने इस निराशा के माध्यम से वैराग्य का दीप जला दिया। अब मैं विषय–भोगों की दुराशा छोड़कर उन्हीं जगदीश्वर की शरण ग्रहण करूँगी।

कुरर पक्षी से शिक्षा– प्रिय वस्तु का संग्रह ही दुःख का कारण है, यह शिक्षा भगवान् दत्तात्रेयजी ने कुरर पक्षी से ली। कहा जाता है कि कुरर पक्षी एक बार मांस का टुकड़ा लेकर उड़ा। उस मांस के टुकड़े को लेने के लिये अनेक पक्षी उसे ही मारने को उद्यत हो गये, किन्तु ज्यों ही उसने मुँह में रखा मांस का टुकड़ा जमीन की ओर गिराया त्यों ही सभी पक्षी उसी ओर दौड़ पड़े, जिससे वह निश्चिन्त होकर पुनः आकाश में विचरण करने लगा, बुद्धिमान् पुरुष को अनन्त सुखस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिये कुरर पक्षी द्वारा संग्रहीत मांस का टुकड़ा फेंकने की भांति संचित धन का त्याग करके सुखी हो जाना चाहिये। त्याग और अपरिग्रह द्वारा ही मनुष्य निश्चिन्त होकर जीवन–यापन कर सकता है।

बालक से शिक्षा– मान–अपमान का ध्यान न रखनेवाले, घर एवं परिवार की चिन्ता से विहीन, आत्मरागी बालक से भगवान् दत्तात्रेय जी ने यह शिक्षा ग्रहण की कि इस संसार में दो ही प्रकार के व्यक्ति निश्चिन्त और परमानन्द में रहते हैं–एक तो भोला–भाला निश्चेष्ट नन्हा–सा बालक और दूसरा वह पुरुष जो गुणातीत हो गया है।

कुमारी कन्या से शिक्षा– अतिथि–सत्कार के लिये धान कुटनेवाली कुमारी कन्या से भगवान् दत्तात्रेय जी यह शिक्षा ग्रहण की कि जब बहुत लोग एक साथ रहते हैं तब कलह होता है और जब दो आदमी एक साथ रहते हैं, तब भी वाद–विवाद की सम्भावना रहती है, इसलिये कुमारी कन्या की चूड़ी के समान जब तक वह अकेली नहीं हुई तब तक आपसी संघर्ष से और उससे उत्पन्न ध्वनि से वह अपने को छिपा न सकी थी। इसीलिये साधक को एकान्त–सेवन की भी आवश्यकता उसके साधनाकाल में होती ही रहती है।

बाण बनाने वाले से शिक्षा– बाण बनानेवाले से भगवान् दत्तात्रेयजी ने यह शिक्षा ग्रहण की

कि आसन और श्वास को जीतकर वैराग्य और अभ्यास के द्वारा अपने मन को वश में किया जा सकता है, जैसे एक बाण बनानेवाले को रास्ते से आने-जानेवालों का पता नहीं लग सका था। राजा की सवारी का भी ध्यान नहीं था।

साँप से शिक्षा– साधक को सर्प की भांति अकेले ही विचरण करना चाहिये, उसे मण्डली नहीं बांधनी चाहिये, मठ नहीं बनाना चाहिये, वह गुहा आदि में पड़ा रहे, बाहरी आचारों से पहचाना न जाय, किसी से सहायता न ले और बहुत कम बोले, अनित्य शरीर के लिये घर बनाने के प्रपंच में पड़े, सर्पवत् जहाँ-कहीं स्थान मिले वहीं आराम से समय काट ले। यही भगवान् दत्तात्रेय जी ने सर्प से शिक्षा ग्रहण की।

मकड़ी से शिक्षा– सबके प्रकाशक भगवान् ही सृष्टिकर्ता, धर्ता एवं हर्ता भी हैं। जैसे मकड़ी अपने हृदय से मुंह के द्वारा जाला फैलाती है, उसी में विहार करती है और फिर उसे निगल जाती है वैसे ही परमेश्वर भी इस जगत् को अपने में से उत्पन्न करते हैं, उसमें जीवरूप से विहार करते हैं और फिर उसे अपने में ही लीन कर लेते हैं। यही भगवान् दत्तात्रेयजी ने मकड़ी से शिक्षा ग्रहण की।

भृंगी (बिलनी) कीड़े से शिक्षा– यदि प्राणी स्नेह से, द्वेष से अथवा भय से भी जान-बूझकर एकाग्ररूप से अपना मन किसी में लगा दे तो उसे उसी वस्तु का स्वरूप प्राप्त हो जाता है, जैसे भृंगी एक कीड़े को जाकर दीवाल पर अपने रहने की जगह में बंद कर देता है, तब वह कीड़ा भय से उसी का चिन्तन करते-करते पहले शरीर का त्याग किये बिना उसी शरीर से तद्रूप हो जाता है। इसलिये मनुष्य को विषयवस्तु का चिन्तन न करके केवल परमात्मा का ही चिन्तन करना चाहिये। यही शिक्षा भगवान् दत्तात्रेयजी ने भृंगी कीड़े से ग्रहण की।

भगवान दत्तात्रेयजी ने चौबीस गुरुओं का उदाहरण देते हुए यह शिक्षा दी कि साधक यदि उन्मुक्त भाव से शिक्षा ले तो उसे अच्छे-बुरे, छोटे-बड़े सभी से उपयुक्त ज्ञान मिल सकता है। ज्ञान-प्राप्ति के लिये आवश्यकता है-उन्मुक्त भाव की, पूर्वाग्रहमुक्त, गतानुगतिकता से रहित शुद्ध दृष्टि की। साधक जब किसी आग्रह अथवा मोहवश सच को सच मानने से भागता है, तब उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। मनुष्य को जीभ अपनी ओर खींचती है तो प्यास जल की ओर, त्वचा और कान कोमल स्पर्श और मधुर शब्द की ओर खींचते हैं। नाक और नेत्र भी मधुर गन्ध और सुन्दर दृश्यों की ओर खींचते हैं। इस प्रकार कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियों के कारण मनुष्य को दौड़ाती रहती है। इसलिये अनेक जन्मों के बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह शीघ्र-से-शीघ्र मृत्यु के पहले ही इन बन्धनों को समझे और इससे मुक्ति का, मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न कर ले। समस्त आसक्तियों का परित्याग करके भगवान् को प्राप्त करना ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है। ज्ञान-प्राप्ति का आधार आग्रहरहित बुद्धि और दृष्टि है। उन्मुक्त भाव ही शुद्ध ज्ञान का आधार और माध्यम है। ❁❁❁

गतांक से आगे-

स्वास्थ्य चर्चा

छींक लाने वाला नस्य

जरा-सी चूल्हे की राख में दो बूँद आकौड़ा (आक, अकौआ) का दूध डालकर मिला लें और उसकी नस्य दें। 3-4 मिनट में छींकें आनी आरम्भ हो जाएँगी। जब छीकें बन्द करनी हों तब एक लोटा पानी से नाक और गला साफ करा दें।

जख्म

जख्मों पर तुलसी के पत्ते पीसकर लगाने से आराम होता है।

जम जूं

सरसों के 20 ग्राम तेल में नीबू का 25 ग्राम रस मिलाकर दो-तीन दिन तक लगाएँ। जम जूं नष्ट हो जाएँगी।

जले पर

1. गूलर के पत्तों को पीसकर लगाना अतीव लाभदायक है। कैसा ही भयंकर जल गया हो, इसके लगाने से बहुत शीघ्र आराम मिलता है। जले की इससे उत्तम औषधि मिलना कठिन है।

2. राल सफेद 10 ग्राम, गोले का तेल 160 ग्राम। राल को पीसकर तेल में मिला लें। फिर दोनों को मथकर 101 बार पानी में धोकर लेप करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। जलन और पीड़ा तत्क्षण शान्त हो जाती है। दवा को मथकर पानी के घड़े में रखा रहने दें। यह भी अमोघ औषधि है।

3. जले हुए स्थान पर तुरन्त गाय को गोबर लगा दो। फौरन आराम आ जाता है। निशान भी नहीं पड़ता।

जलन्धर (जलोदर)

1. 40 ग्राम कुटकी लेकर उसे जौ-कुट कर लें और 250 ग्राम पानी में काढ़ा बना लें। चौथाई पानी रहने पर उतारकर छान लें। ठण्डा होने पर रोगी को पिला दें। 21 दिन तक पिलाएँ।

पथ्य में केवल गौ या बकरी का दूध दें। 21वें दिन साठी के चावल का मांड 50 ग्राम दें। फिर क्रमशः मांड की मात्रा बढ़ाते जाएँ परन्तु दिन में एक बार ही दें। शेष समय में दूध ही दें। दूसरे सप्ताह में मौठ और भात दें।

2. इन्द्रायण की जड़ 6 ग्राम प्रातः सायं पानी में घोटकर पीने से सब दोष दस्तों द्वारा निकलकर जलन्धर रोग मिट जाता है।

3. लालमिर्च के पौधें की पत्तियां 20 ग्राम, कालीमिर्च 10 दाने, दोनों को ठण्डाई की भांति

पीस–छान तथा एक–एक ग्राम नौशादर और सेंधा नमक मिलाकर रोगी को पिलाएँ। जलोदर के लिए अतीव गुणकारी है।

4. ताजा करेला को कूटकर पानी निकालें। यह पानी प्रतिदिन 50 ग्राम रोगी को पिलाएं। बढ़े हुए जिगर और जलन्धर के लिए लाभदायक है।

5. चने की दाल 50 ग्राम को डण्डा थूहर के दूध में भिगोकर सुखाएँ, पुनः दूध में भिगोकर सुखाएँ। इस प्रकार दूध में भिगो–भिगोकर तीन बार सुखाएँ। इस दाल के दो दाने प्रतिदिन प्रातः पानी के साथ खाएँ। इससे दस्त लगेंगे। कुछ दिन के प्रयोग से जलन्धर में लाभ प्रतीत होने लगेगा।

6. सेंधा नमक और राई, दोनों समभाग लेकर कूट–पीसकर चूर्ण बना लें। 6 ग्राम चूर्ण गोमूत्र में घोलकर पीने से कुछ ही दिन में जलोदर ठीक हो जाता है।

7. एक बड़ा बैंगन लेकर उसमें छेद करके डण्डा नौशादर भरकर ओस में रख दें। प्रातः इसे निचोड़कर रस निकाल लें। इस रस की 4–5 बूंदें बताशे में डालकर रोगी को निगला दें।

इससे जलोदर के रोगी को एक मटका पेशाब होगा। एक मास तक सेवन करें। जलोदर और तिल्ली रोग अवश्य मिट जाते हैं।

जाला एवं फूला

कच्चे आलू को किसी साफ पत्थर पर घिसकर प्रातः सायं काजल की भांति लगाने से 5–6 वर्ष का जाला और चार वर्ष तक का फूला 2–3 मास में साफ हो जाता है।

जिगर की गर्मी

1. 20 ग्राम इमली को रात्रि में 200 ग्राम पानी में भिगो दें। प्रातः इसके साफ निथरे हुए पानी में खाण्ड मिलाकर पिएँ। कुछ दिन के सेवन से बढ़ी हुई गर्मी शान्त हो जाती है।

2. गौ की पतली छाछ दिन में 2–3 बार पिएँ। जिगर की बढ़ी हुई गर्मी को दूर करने के लिए चमत्कारी दवा है।

जी मिचलाना

1. कपूर कचरी को कूट–पीस पानी के साथ मूंग के बराबर गोलियां बनाकर रख लें। इन गोलियों के चूसने से उल्टी बन्द हो जाती है।

2. 50 ग्राम चावलों को एक गिलास स्वच्छ पानी में भिगो दें। एक घण्टा पश्चात् इस पानी को पिलाने से जी मिचलाना बन्द हो जाता है।

3. मिट्टी का एक पुराना दीपक आग में रख दें। जब दीपक लाल हो जाए तब बुझाकर उसका पानी पीने से जी मिचलाना बन्द हो जाता है।

जुएँ पड़ना

1. सुहागा और फिटकरी, दोनों को समभाग लेकर बारीक पीस लें और पानी में मिलाकर सिर

को धोएँ, जुएँ मर जाएँगी।

2. जिन बालों में जुएँ हों उनमें रात में मिट्टी को तेल या पैट्रोल लगाकर ऊपर से कोई कपड़ा बांध दें। प्रातः गर्म पानी और साबुन से सिर धोएँ। सब जुएँ मरकर निकल जाएँगी।

जुकाम

1. लौंग 7 नग लेकर 120 ग्राम पानी में उबालें। जब पानी 30 ग्राम रह जाए तब उतारकर छान लें। इससे नाक के दोनों नथनो में गर्म-गर्म बफारा लें तथा कुछ शीतल होने पर पी लें।

2. मलमल के एक साफ वस्त्र में 1 ग्राम अजवायन रखकर पोटली बाँध लें। इसे हथेली पर रगड़कर बार-बार सूंघें। जुकाम दूर करने के लिए अत्यन्त सस्ता परन्तु जादू की भांति काम करनेवाला योग है।

3. भांग की पत्ती डेढ ग्राम, गुड़ तीन ग्राम।

दोनों को मिलाकर गोली बना लें और रोगी को निगला दें।

दवा खाने के बाद पानी पीना सख्त मना है और तुरन्त सो जाना आवश्यक है। एक रात्रि में ही जुकाम दूर हो जाएगा।

नोट– भंगेड़ियों पर इस दवा का प्रभाव नहीं होता।

4. देशी कपूर और चीनी समभाग लेकर दोनों को बारीक पीस लें। फिर पानी के साथ 6-6 ग्रेन की गोलियाँ बना लें। इन गोलियों को कालीमिर्च के चूर्ण में रखें।

2-2 घण्टे में एक-एक गोली चूसते रहें। तीन दिन सेवन करें, जुकाम दूर हो जाएगा।

5. कालीमिर्च 3 ग्राम, गुड़ 25 ग्राम, गाय का दही 50 ग्राम।

कालीमिर्चों को पीसकर तीनों का मिला लें। प्रातः सायं दोनों समय सेवन करने से बिगड़ा हुआ जुकाम ठीक हो जाएगा और फिर नहीं होगा।

6. दो ग्राम पिसी हुई सोंठ की फँकी लेकर ऊपर से गर्म दुग्ध का पान करें। इससे जुकाम दूर हो जाता है।

7. कपड़े को गर्म कर माथे को खूब सेकने से जुकाम दूर होता है।

8. बताशे 11 नग, कालीमिर्च 11 नग। दोनों को 100 ग्राम पानी में औटाएँ। जब 50 ग्राम पानी रह जाएं तब उतार लें और ठण्डा होने पर पी जाएँ। इसके पीने से जुकाम दूर होता है। (मिर्चों को थोड़ा-सा कूट लें)।

जोड़ों का दर्द

विजयसार 50 ग्राम लेकर कूट लो और आधा किलो पानी में औटाओ। जब चौथाई पानी रह जाए तब उतारकर छान लो। 6 ग्राम पिसी हल्दी फांककर ऊपर से यह काढ़ा पी लो। 5-6 दिन प्रयोग करें।

ज्वर–नाशक

1. ताजा लालमिर्च का रस निकालकर 3–3 बूंद कानों में डालें। डालते ही चौथैया आदि तमाम ज्वर दूर होंगे।

2. कालीमिर्च और तुलसी के पत्ते, दोनों को लेकर बारीक पीस लें और उड़द के बराबर गोलियाँ बना लें।

दो गोली प्रतिदिन गर्म दूध या पानी अथवा अर्क गावजबाँ के साथ खाने के ज्वर ऐसा भागता है कि उसका पता ही नहीं लगता।

3. 100 ग्राम नीम की छाल को कूटकर मिट्टी के बर्तन में आधा किलो पानी डालकर इतना घौटाएँ कि चौथाई पानी रह जाए।

इस पानी को छानकर तथा इसमें शहद या मिश्री मिलाकर पी जाएँ और कपड़ा ओढ़कर लेट जाएँ। थोड़ी देर में पसीना आकर ज्वर उतर जाएगा।

यदि आवश्यकता हो तो दूसरे दिन भी ले सकते हैं। यह कुनैन से भी अधिक प्रभावशाली दवा है।

4. जल 250 ग्राम, दूध 500 ग्राम, शीशम का बुरादा 6 ग्राम। तीनों को मिलाकर औटाएँ। जब दूध शेष रह जाए तब उतारकर छान लें और पान कराएँ। सभी प्रकार के ज्वरों में यह अतीव लाभप्रद है।

5. आके पीले पत्ते आग में जलाकर भस्म कर लें और शहद के साथ आधा ग्राम सेवन कराएँ। शीतज्वर तत्काल छूट जाता है।

झड़ते बालों को रोकने के लिए

कनेर की जड़ की छाल और दुद्धी 10–10 ग्राम लेकर दूध में पीस लें। पके बालों को उखाड़कर लेप करें। बाल काले ही उगेंगे। झड़ते हुए बाल नहीं झड़ेंगे।

झाईं

1. तुलसी के पत्ते पानी में पीसकर लगाने से मुख की झाइयाँ खत्म हो जाती हैं।

2. रीठे का छिलका पानी में पीसकर लगाने से मुखमण्डल की झाँई और दाग–धब्बे दूर हो जाते हैं।

टॉन्सिल

नमक, हल्दी और बायबिडंग, तीनों को 6–6 ग्राम लेकर आधा किलो पानी मे औटाएँ, फिर छानकर सुहाते–सुहाते पानी से गरारे करें।

एक सप्ताह में ही रोग जाता रहेगा।

–(शेष अगले अंक में)

भारत-स्तुति

रचयिताः मैथिलीशरण गुप्त

बसते वसुधापर देश कई, जिनकी सुषमा सविशेष नई।
पर भारत की गुरुता इतनी, इस भूतल पै कहीं जितनी॥
गुण गुम्फित हैं इसमें इतने, पृथिवीपर हैं न कहीं जितने।
किसकी इतनी महिमा वर है, इसपै सब विश्व निछावर है॥
सुखमूल उशीर-सुगन्धि-सनी, क्षिति शोभित कांचन रेणुघनी।
शुचि सौरभ पूर्ण सुवर्ण जहाँ, वसुधापर है वह देश कहाँ?
उपजे सब अन्न सदा जिसमें, अचला अति विस्तृत है इसमें।
जग में जितने प्रिय द्रव्य जहाँ, समझो सबकी भव भूमि यहाँ॥
प्रिय दृश्य अपार निहार नये, छवि वर्णन में कवि हार गये।
उपमा इसकी न कहीं पर है, धरणीधर ईश-धरोहर है॥
जल वायु महा हितकारक हैं, रुज हारक स्वास्य प्रसारक हैं।
द्युतिमन्त दिगन्त मनोरम है, क्रम षड्ऋतु का अति उत्तम है॥
सुखकारक ऊपर श्याम घटा, दुख-हारक भूपर शस्य-छटा।
दिन में रवि लोक-प्रकाशक है, निशि में शशि ताप-विनाशक है॥
छबिमान कहीं पर खेत हरे, वन-वर्ग कहीं फल-फूल भरे।
गिरि तुंग कहीं मन मोह रहे, सब ठौर जलाशय सोह रहे॥
रतनाकरकी रसना पहने, बहु पुष्प-समूह बने गहने।
परिधान किये तृण-वीर हरा, अति सुन्दर है यह दिव्य धरा॥
बहु चम्पक कुन्द कदम्ब बड़े, बकुलादि अनन्त अशोक खड़े।
कितने न इसे वर वृक्ष मिले, अति चित्र विचित्र प्रसून खिले॥
मृदु बेर मुखप्रिय जन्बु फले, कदली शहतूत अनार भले।
फलराज रसाल समान कहीं, फल और मनोहर एक नहीं॥
कृषि केसर की भरपूर यहाँ, मृग गन्ध कुसुम्भ कपूर यहाँ।
समझो मध्मु का बस कोश इसे, रस हैं इतने उपलब्ध किसे॥

अमृतोपम अद्‌भुत शक्तिमयी, जिनकी सुगुण-श्रुति दिव्य नयी।
इसमें बहु ओषधियाँ खिलतीं, जल में थल में तल में मिलतीं॥
कृषि इसने जग जीत लिया, किसने इससा व्यवसाय किया?
सन रेशम ऊन कपास अहो! उपजा इतना किस ठौर कहो?
अवनी उर में बहु रत्न भरे, कनकादिक धातु समूह धरे।
वह कौन पदार्थ मनोरम है, जिसका न यहाँ पर उद्‌गम है॥
कवि पण्डित वीर उदार महा, प्रकटे मुनि-धीर अपार यहाँ।
लख के जिनकी गति के मग को, गुरु-ज्ञान सदा मिलता जग को॥
बहु भांति बसे पुर ग्राम घने, अब भी नभचुम्बक धाम बने।
सब यद्यपि जीर्ण विशीर्ण पड़े, पर पूर्व-दशास्मृति-चिन्ह खड़े॥
अब भी वन में मिलके चरते, बहु गो-गण हैं मन को हरते।
इनसा उपकारक जीव नहीं, पय तुल्य न पेय पदार्थ कहीं॥
मदमत्त कहीं गज झूम रहे, मुदमान कहीं मृग घूम रहे।
शुक चातक कोकिल बोल रहे, कर नृत्य शिखी-गण डोल रहे॥
शतपत्र कहीं पर फूल रहे, मधु मुग्ध मधुव्रत भूल रहे।
कल-हंस कहीं रव हैं करते, जल जीव प्रमोद भरे तरते॥
शुचि शीतल मन्द सुगन्ध-सनी, फिरती पवन प्रिय नारि बनी।
हरती सबका श्रम सेवन में, भरती सुख है तन में मन में॥
जगती तल में वह देश कहाँ, निकले गिरि-गन्ध शेष जहाँ।
इसमें मलयाचल शोभन है, जिसमें घन चन्दन का वन है॥
सिर है गिरिराज अहो! इसका, इस भांति महत्व कहो किसका।
तुहिनालय यद्यपि नाम पड़ा, विभवालय है वह किन्तु बड़ा॥
वर विष्णु पदी बहती इसमें, रवि की तनया रहती इसमें।
अघ-नाशक तीर्थ अनेक यहाँ, मिलती मन को चिरशान्ति यहाँ॥
क्षिति-मण्डल था जब अज्ञ सभी, यह था अति उन्नत सभ्य तभी।
बहु देश समुनत जो अब हैं, शिशु-शिष्य इसी गुरु के सब हैं॥
शुचि शौर्य-कथा इतनी किसकी, जग-विस्तृत है जितनी इसकी।
अमरों तक का यह मित्र रहा, अति दिव्य चरित्र पवित्र रहा॥

ध्रुव–धर्ममयी इसकी क्षमता, रखती न कहीं अपनी समता।
गरिमा इसकी न कहाँ पर है, किससे न लिया इसने कर है?
श्रुति शास्त्र पुराण तथा स्मृतियाँ, बहु अन्य सुधी–गण की कृतियाँ।
नय–नीति–नियन्त्रित तन्त्र बने, सब ही विषयों पर ग्रन्थ घने॥
कविता कल नाट्य सुशिल्प–कला, इस भांति बढ़ी किस ठौर भला?
किसपै न रहा इसका कर है, किस सद्गुण का न यहाँ घर है?
सुखमूल सनातन धर्म रहा, अनुकूल अलौकिक कर्म रहा।
वर वृत्त बढ़े इतने किसके? नर क्या सुर भी वश हैं इसके॥

❁❁❁

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन–जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठको से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/– एक सौ पचास रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/– एक हजार पाँच सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार–प्रसार जन–जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

–धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या–
इण्डियन ओवरसीज बैंक
शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा
I F S C Code- IOBA 0001441
'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या– 144101000002341

ऋग्वेद ॥ ओ३म्॥ यजुर्वेद

श्री गुरू विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर, मथुरा

का

वार्षिक–उत्सव

दिनांक 26, 27 जुलाई 2018

सभी भद्रपुरुषो!

आपके अपने गुरुकुल श्री विरजानन्द आर्ष गुरुकुल, वेदमन्दिर मथुरा का वार्षिक उत्सव आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी और पूर्णिमा तदनुसार दिनांक **26** और **27** जुलाई **2018** दिन **गुरुवार** और **शुक्रवार** (गुरूपूर्णिमा) को मनाया जा रहा है। हम इस पर्व को श्री विरजानन्द जयन्ती के रूप में मनाते हैं। इस अवसर पर नवीन ब्रह्मचारियों के प्रवेश के अवसर पर उपनयन संस्कार का भव्य आयोजन होता है। उस समय वैदिक कालीन दृश्य उपस्थित हो जाता है। आप भी परिवार सहित आकर अपने बच्चों को वैदिक संस्कृति के संस्कारों से संस्कारवान करें जिससे वे अपना, परिवार, राष्ट्र और समाज का उद्धार कर सकें।

यही मानव जीवन की सफलता है ऐसे पुनीत कार्य में सैकड़ों सांसारिक आवश्यक कार्यों को विराम देकर भी पधारें क्योंकि ऐसे जीवन निर्माण के समय बार–बार नहीं आते। उत्सव आप लोगों के लिए ही है उसकी सफलता का दायित्व भी आप पर है आशा है इस दैवीय दायित्व का निर्वहन कर अपने मानव जीवन को सार्थक करेंगे।

❁ निवेदक ❁

(अध्यक्ष)	(मंत्री)	(अधिष्ठाता)
डॉ0 सत्यप्रकाश अग्रवाल	**बृजभूषण अग्रवाल**	**आचार्य स्वदेश**

विशेषः गुरुकुल आने के लिए बस या ट्रेन से उतरने के बाद मसानी चौराहा, वृन्दावन मार्ग पर स्थित है। यहाँ से पूर्व की ओर आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग (कच्ची सड़क) पर मात्र 100 पग चलकर गुरुकुल का मुख्य द्वार है।

सामवेद अथर्ववेद

सुदृढ़ होते थे। जीवन में आयी प्रत्येक चुनौतियों को हंसते-हंसते स्वीकार ही नहीं करते थे अपितु उसका समाधान भी निकालकर दिखाते थे। ऐसे विद्या सम्पन्न युवकों से समाज और राष्ट्र अपने को सर्वथा सुरक्षित कर लेता था लेकिन वर्तमान के शिक्षाविद जो नयी पीढ़ी के भाग्य विधाता हैं वे आकण्ठ वासनाओं में डूबे हुए हैं और अपनी वासनाओं के अनुसार ही कुतर्कों का सहारा लेकर सहशिक्षा का प्रावधान करते हैं और सरकार ने भी उनकी योजनाओं को साकार रूप प्रदान किया है। इससे बालकों में असमय में ही वासना का आवेग ऐसा छाया कि परिपक्वता प्राप्त होने से पहले ही तन-मन का नाश हो गया जो समय शारीरिक और मानसिक पुष्टि करने का था वह समय वासना के कीचड़ में फंसकर अपने विनाश का साधन तैयार करने में लग गया इसका परिणाम अशक्त, असहाय, बुद्धिहीन युवकों की भारी भीड़ के रूप में दिखायी दे रहा है। शिक्षा का उद्देश्य हमसे कोसों दूर छूट गया और सामाजिक अशान्ति का कारण बन गया।

महर्षि दयानन्द ने शिक्षा के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए लिखा कि जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित रहें वह शिक्षा कहाती है। महर्षि दयानन्द माता-पिता और आचार्यों को भी मनमानी शिक्षा देने न का निर्देश करते हैं उनको भी इस प्रकार की शिक्षा का निषेध करते हुए लिखते हैं कि जो अपने पुत्र, पुत्री और विद्यार्थियों को सुनावें कि सुन मेरे बेटे, बेटियां और विद्यार्थी! तेरा शीघ्र विवाह करेंगे, तू इसकी दाढ़ी-मूंछ पकड़ले, इसकी जटा पकड़ के ओढ़नी फेंक दे, धौलमार, गाली दे, इसका कपड़ा छीन ले, पगड़ी वा टोपी फेंक दे, खेल-कूद, हंस-रो, तुम्हारे विवाह में फुलवारी निकालेंगे इत्यादि कुशिक्षा करते हैं, उनको माता-पिता और आचार्य न समझना चाहिये किन्तु सन्तान और शिष्यों के पक्के शत्रु और दुःखदायक हैं क्योंकि जो बुरी चेष्टा देखकर लड़कों को न घुड़कते और न दंड देते हैं। वे क्योंकर माता-पिता और आचार्य हो सकते हैं क्योंकि जो अपने सामने यथातथा बकने, निर्लज्ज होने, व्यर्थ चेष्टा करने आदि बुरे कर्मों से हटाकर विद्या आदि शुभगुणों के लिए उपदेश नहीं करते, न तन-मन-धन लगाके उत्तम विद्या व्यवहार का सेवन कराकर अपने सन्तानों का सदा श्रेष्ठ करते जाते हैं। वे माता-पिता और आचार्य कहाकर धन्यवाद के पात्र कभी नहीं हो सकते और जो अपने-अपने सन्तान और शिष्यों को ईश्वर उपासना, धर्म-अधर्म, प्रमाण, प्रमेय, सत्य, मिथ्या, पाखण्ड, वेद, शास्त्र आदि के लक्षण और उनके स्वरूप का यथावत् बोध करा और सामर्थ्य के अनुकूल उनको वेदशास्त्रों के वचन भी कण्ठस्थ कराकर विद्या पढ़ने, आचार्य के रहने की रीति जना देवें कि जिससे विद्या प्राप्ति आदि प्रयोजन निर्विघ्न सिद्ध हों, वे ही माता-पिता और आचार्य कहाते हैं। इस प्रकार यदि पठन-पाठन की सुव्यवस्था हो तो निश्चित रूप से संसार में विद्या का फल जो आनन्द है वो समाज को मिल सकता है। अन्यथा वर्तमान शिक्षा प्रणाली सर्वनाश की जड़ है। गुप्तजी ने ठीक ही लिखा है कि-

शिक्षे! तुम्हारा नाश हो तू नौकरी के हित बनी।
लो मूर्खते जीवित रहो रक्षक तुम्हारे हैं धनी।
श्रीमान डाटे तो श्रीमती कहती वही।
घेरो न लल्ला को हमारे नौकरी करनी नहीं।।

जब शिक्षा का मात्र उद्देश्य अर्थ रह जाता है तब शिक्षा सारे अनर्थों की जननी बन जाती है और जब शिक्षा का उद्देश्य आत्मविकास होता है तब शिक्षा समाज के सम्पूर्ण सुख का आधार बन जाती है। ❁

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	भ्रांति दर्शन	20.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	शान्ता	20.00
शंकर सर्वस्व	120.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	बाल मनुस्मृति	12.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	ओंकार उपासना	12.00
विदुर नीति	40.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	दादी पोती की बातें	10.00
चाणक्य नीति	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
नित्य कर्म विधि	32.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
वेद प्रभा	30.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शान्ति कथा	30.00	सच्चे गुच्छे	8.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
यज्ञमय जीवन	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
दो बहिनों की बातें	30.00	गायत्री गौरव	5.00
दो मित्रों की बातें	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
चार मित्रों की बातें	20.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
मील का पत्थर	20.00	जीजा साले की बातें	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2018 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

.....

.....

.....

.....

..... पिन कोड .....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल- 9759804182

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600